Ethics (नीतिशास्त्र)

1. नीतिशास्त्र
2. मूल्य
3. आधुनिक विचारक
4. पश्चिमी विचारक
5. भारतीय विचारक
6. नैतिक सम्प्रत्यय
7. भगवद्गीता एवं प्रशासन में भूमिका
8. निजी व सार्वजनिक संबंधों में नीतिशास्त्र
9. राजनीतिक एवं नैतिक अभिवृत्ति

Springboard ACADEMY

नीतिशास्त्र

- एथिक्स शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के शब्द 'ETHICA' से हुई है जिसका अर्थ है रीति रिवाज
- इसका एक समानांतर शब्द है 'मोरेलिटी' जिसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के 'मोरेस' से हुई है इसका भी अर्थ रीति–रिवाज है।
- समाज में लोगों के व्यवहार को नियमित करने के लिए रीति–रिवाज का निर्माण किया जाता है।
- एथिक्स सैद्धान्तिक है जबकि मोरेलिटी व्यावहारिक है।

नीतिशास्त्र की परिभाषा – यह एक आदर्शमूलक विज्ञान है, जिसमें समाज में रहने वाले सामान्य मनुष्य के ऐच्छिक आचरण, सामाजिक नियम, दार्शनिक सिद्धांत का नैतिक मूल्यांकन किया जाता है।

सही गलत, उचित–अनुचित, शुभ–अशुभ का निर्धारण किया जाता है तथा सामाजिक मानक स्थापित किए जाते हैं।

नीतिशास्त्र की आवश्यकता –

1. समाज में एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है, इसलिए इस व्यवहार को नियमित करने की आवश्यकता है।
2. सही क्या है और गलत क्या है के बीच भेद करने के लिए नीतिशास्त्र आवश्यक है।
3. नीतिशास्त्र व्यक्ति को मार्गदर्शन प्रदान करता है कि अच्छा जीवन कैसे जिया जाए।
4. यह कुछ रूढ़/गहरे प्रश्नों पर भी चर्चा करता है।
   जैसे – जीवन का उद्देश्य क्या है?
   सुख क्या है?
   न्याय क्या है?
   कर्त्तव्य क्या है?

प्रशासन में नीतिशास्त्र की आवश्यकता –

1. यह अधिकारों के दुरूपयोग को रोकता है।
2. यह कर्त्तव्यों के निर्वहन को सुनिश्चित करता है।
3. सिविल सेवक समाज और प्रशासन के लिए प्रेरणास्त्रोत है, इसलिए उनका नैतिक चरित्र सशक्त होना चाहिए।
4. यदि नैतिक चरित्र सशक्त होता है तो व्यक्ति अपने करियर में उपलब्धि भी अधिक प्राप्त कर पाता है।
5. नैतिकता व्यक्तिगत जीवन में भी आत्मसंतुष्टि प्रदान करती है।
6. यह नैतिक दुविधाओं को हल करने में मदद करती है।
7. नीतिशास्त्र नैतिक निर्णय लेने में मदद करता है।

नीतिशास्त्र दर्शन का भाग है–

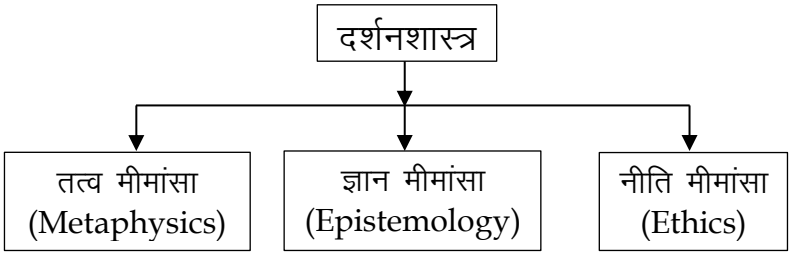

तत्व मीमांसा –

- जगत का मूल तत्व क्या है?
- मूल तत्व की प्रकृति क्या है?
- मूल तत्व की संख्या क्या है?

ज्ञान मीमांसा –

- ज्ञान का स्त्रोत क्या है?
- ज्ञान की वैधता कैसे निर्धारित की जाती है?

नीति मीमांसा –

- सही और गलत क्या है?
- एक अच्छा जीवन कैसे जिया जाए?
- जीवन का उद्देश्य क्या है?

निम्नलिखित को नीतिशास्त्र के अध्ययन से बाहर रखा जाता है–

1. समाज में ना रहने वाले मनुष्य
2. पशु –पक्षी
3. मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्ति
4. 7 वर्ष से कम आयु के बच्चे
5. अनैच्छिक कार्य
6. दबाव में किए गए कार्य

नीतिशास्त्र की पूर्व मान्यता –

- संकल्प स्वातंत्र्य को नीतिशास्त्र की पूर्वमान्यता कहा जाता है इसका अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए उसे निर्णयों हेतु उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।
- संकल्प स्वातंत्र्य के लिए नियतिवाद को नकार दिया जाता है।
- नियतिवाद के अनुसार 'इस संसार में सब कुछ पहले से निर्धारित है।

संकल्प स्वातंत्र्य के लिए 3 आवश्यक शर्तें –

1. विकल्पों की उपलब्धता
2. कार्य करने की क्षमता
3. परिणामों का ज्ञान

मूल्य

- मूल्य का समान अर्थ है 'महत्ता'।
- जिसकी महत्ता अधिक होती है उसका मूल्य भी अधिक होता है।

नैतिक मूल्य – ये समाज के गहरे नैतिक आदर्श होते है जिनकी स्थापना के लिए समाज में रीति–रिवाजों का निर्माण किया जाता है– जैसे– बड़ों का आदर करना नैतिक मूल्य है इसकी स्थापना के लिए बड़ों के पैर छूने का एक रीति–रिवाज है।

मानवीय मूल्य – ये मनुष्य के गहरे विश्वास होते है जो कि उसके आचरण को प्रेरित करते है ये सही भी हो सकते है और गलत भी हो सकते हैं। परन्तु व्यक्ति को लगता है कि यह सही है।

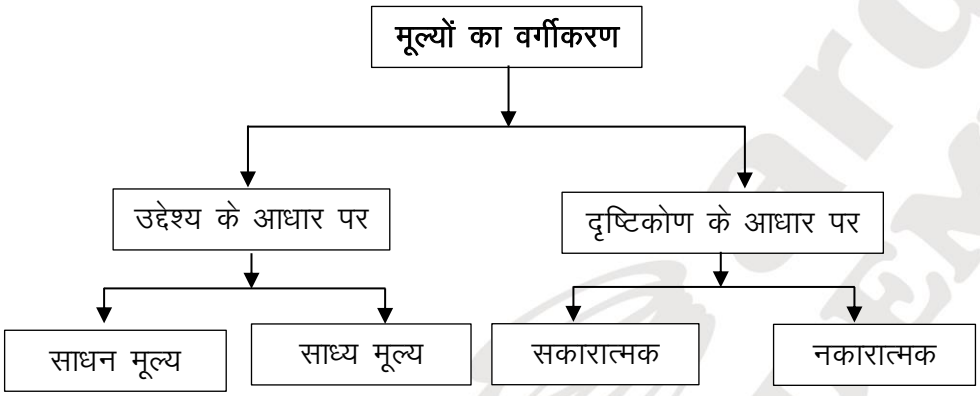

साधन मूल्य –

- वे मूल्य जिनके माध्यम से किसी उच्चतर मूल्य की प्राप्ति की जाती है।
- ये मूल्य अधीनस्थ मूल्य होते है।
  जैसे– सामाजिक मूल्य, शारीरिक मूल्य, आर्थिक मूल्य

साध्य मूल्य –

- ये मूल्य जीवन के परम उद्देश्य होते है। जीवन की सभी गतिविधियां इन्हीं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। जैसे न्याय, स्वतंत्रता, समानता, सत्य, अंहिसा, सुख, कर्त्तव्य मोक्ष।

सकारात्मक मूल्य –

- वे मूल्य जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाते है, इसलिए इन्हें समाज में प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे– सत्य, विनम्रता, धैर्य, अहिंसा, न्याय।

नकारात्मक मूल्य –

- ये समाज में नकारात्मक परिवर्तन लाते है, इसलिए इन्हे हतोत्साहित किया जाता है। जैसे– अन्याय, क्रोध, हिंसा।

मूल्यों की विशेषताएँ –

- मूल्य अमूर्त होते है।
- मूल्य आदर्श के रूप में होते है, अर्थात् पूर्णरूप से इन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता।
- मूल्य आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ भी होते है।
- अलग–अलग समाज के मूल्य अलग–अलग प्रकार के होते है।
  जैसे– पश्चिमी समाज में व्यक्तिवाद का मूल्य अधिक सशक्त है।

- मूल्यों का एक सोपानक्रम होता है अतः कुछ मूल्य अधिक महत्वपूर्ण होते है और कुछ कम महत्वपूर्ण होते है।
- मूल्य सामान्यतः स्थायी होते है परन्तु इनमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।
- मूल्य जन्मजात नहीं होते है इन्हें सीखा जाता है।

मूल्य निर्माण की महत्ता –

- आदर्श–नैतिक कार्य
- सामाजिक ढांचे के साथ अनुकूलता
- व्यक्तित्व निर्माण
- विभिन्न परिस्थितियों में निर्णय लेने की क्षमता।
- दीर्घकालिक प्रभाव
- नैतिक दुविधा को हल करने में सहायक।

मूल्य निर्माण के मुख्य स्रोत –

1. परिवार
2. समाज
3. शिक्षण संस्थान

मूल्य निर्माण में परिवार की भूमिका –

- व्यक्ति के पहले सामाजिकरण की प्रक्रिया परिवार से शुरू होती है, इसलिए परिवार को पहली पाठशाला कहा जाता है।
- व्यक्ति जीवनपर्यन्त परिवार के सम्पर्क में रहता है, इसलिए मूल्य निर्माण का कार्य सतत् रूप से चलता रहता है।
- प्रारम्भिक वर्षों में सीखे गये मूल्य अत्यधिक स्थायी होते है।
- परिवार के विभिन्न सदस्यों के द्वारा अलग–अलग प्रकार के मूल्य सीखाये जाते है।
- परिवार के पास मूल्य निर्माण का एक विशेष अधिकार होता है। वे मूल्य निर्माण की प्रक्रिया पर निरन्तर नजर बनाये रख सकते है।
- परिवार में माता की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। इसलिए माता को पहली शिक्षिका कहा जाता है।

परिवारों में सीखे गये मूल्य –

माता से सीखे जाने वाले मूल्य –

- दया, करूणा, त्याग, ममत्व, देखभाल, बड़ों का आदर करना।

पिता से सीखे जाने वाले मूल्य –

- अनुशासन, नेतृत्व, संयम, कर्तव्य का पालन, निडरता।

भाई–बहन से सीखे जाने वाले मूल्य –

- साझा करने का भाव
- सहयोग

दादा–दादी से सीखे जाने वाले मूल्य –

- धार्मिकता, नैतिकता, आध्यात्मिकता

परिवार में मूल्य निर्माण के लिए अपनायी जाने वाली विधियाँ –

1. लालन–पालन की विधि –
- कुछ परिवारों में पारम्परिक विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसमें अत्यधिक कठोरता पर बल दिया जाता है।
- कुछ परिवारों में उदारवादी विधि का प्रयोग जाता है, जिसमे अत्यधिक लाड़–प्यार पर बल दिया जाता है।

2. प्रेक्षण से सीखना –
- व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार को देखता है तथा उनसे सीखता है।
- इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

3. प्रेरणा स्त्रोत –
- पारिवारिक सदस्य प्रेरणास्त्रोत की भूमिका निभाते है।
- सामान्यतः बड़े भाई बहन, माता–पिता को व्यक्ति अपना आदर्श मानता है।

4. दण्ड और पुरस्कार –
- अच्छे व्यवहार को प्रोत्साहित करने के लिए बच्चों को पुरस्कृत किया जाता है तथा बुरे व्यवहार को दण्डित किया जाता है।

5. शिक्षण –
- परिवार में बच्चे को विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती है। इसके लिए कहानियों आदि का प्रयोग किया जाता है।

6. रीति रिवाज –
- परिवार में विभिन्न रीति–रिवाजों का पालन किया जाता है जिसमे मूल्य का निर्माण होता है।

7. सामाजिक प्रभाव –
- परिवार के कारण व्यक्ति विभिन्न लोगों के सम्पर्क में आता है–
  जैसे– रिश्तेदार
  पारिवारिक मित्र

8. संयुक्त परिवार –
- संयुक्त परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होती है इसलिए विविध प्रकार के मूल्य सीखे जाते है।

समस्याएँ –

- परिवार से विभिन्न प्रकार के नकारात्मक मूल्य भी सीखे जाते हैं–

  जैसे– संकीर्णता, अंधविश्वास, अंधी आज्ञाकारिता, जातिवाद/ जातीय भेदभाव, लैंगिक भेदभाव, धार्मिक कट्टरता

- परिवार के अलग–अलग सदस्यों के द्वारा सिखायें गए मूल्य कई बार आपस में विरोधाभाषी होते है।

  जैसे – रूढ़िगत मूल्य और उदारवादी मूल्य।

- पारिवारिक सदस्यों की कथनी व करनी में अन्तर होता है।
- परिवार एक संस्था के रूप में कमजोर होता जा रहा है, क्योंकि भौतिकतावाद और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के कारण व्यक्ति परिवार से अधिक स्वयं को अधिक महत्व देने लगता है।
- तकनीक के कारण परिवार के सदस्यों के बीच संपर्क कम हो गया है।

मूल्य निर्माण में समाज की भूमिकाः–

- 8 से 10 वर्ष की आयु के बाद व्यक्ति का समाज में सम्पर्क बढ़ जाता है।
- प्रारम्भिक वर्षों में मित्र मण्डली का प्रभाव सर्वाधिक होता है।
- समाज मे विविधता अधिक होती है, इसलिए विविध प्रकार के मूल्य समाज से सीखे जाते है।

- जैसे व्यक्ति का मानसिक विकास होता है वह सामाजिक गतिविधियों को देखकर तथा भाग लेकर मूल्य सीखता है। स्वयं का चिन्तन भी होता है।
- समाज से धार्मिक राजनीतिक मूल्य भी सीखे जाते है।
- सामाजिक नेतृत्व प्रेरणास्त्रोत की भूमिका निभाता है।
- व्यक्ति समाज में अपनी स्वीकार्यता चाहता है तथा सामाजिक आलोचनाओं से बचना चाहता है इसलिए समाज के अनुकूल मूल्यों को सीखता है।
- अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाना चाहता है।

समाज में मूल्य निर्माण की विधियाँ –

1. स्थानीय समुदाय
2. धर्म
3. राजनीति
4. मित्र मण्डली
5. मीडिया
6. व्यवसाय

समस्याएँ –

- समाज में व्यक्ति विभिन्न नकारात्मक मूल्य सीखता है–
- जैसे– भेदभाव (जातीय और सामाजिक), साम्प्रदायिकता, जैविक भेदभाव, घृणा, पाखंड, अंधविश्वास
- समाज में अलग–अलग लोगों के द्वारा विरोधाभासी मूल्य सिखाये जाते है।
- सामाजिक नेतृत्व का स्वयं का चरित्र सशक्त नहीं है।
- सामाजिक आदर्श का अभाव है।
- रूढ़िवादिता

मूल्य निर्माण में शिक्षण संस्थाओं की भूमिकाः–

- मूल्य निर्माण का कार्य औपचारिक रूप से शिक्षण संस्थाओं में किया जाता है।
- शिक्षण संस्थाओं का मुख्य दायित्व परिवार और समाज में सीखे गये नकारात्मक मूल्यों को दूर करना तथा ऐसे सकारात्मक मूल्यों को विकसित करना जो कि परिवार और समाज में उपलब्ध नहीं है। जैसे– संवैधानिक मूल्य, लोकतांत्रिक मूल्य, वैज्ञानिक सोच, धर्मनिरपेक्षता, पर्यावरण संरक्षण, तार्किकता।
- प्राथमिक शिक्षण संस्थाओं की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इस आयु में सीखे गये मूल्य अधिक स्थायी होते है।
- उच्च शिक्षण संस्थाएँ व्यावसायिक, राजनीतिक मूल्य विकसित करने में मदद करती है।
- शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। वह एक प्रेरणास्त्रोत के रूप में कार्य करता है।

शिक्षण संस्थाओं में मूल्य निर्माण की विधियाँ –

1. सांस्कृतिक गतिविधियाँ
2. वाद विवाद पर चर्चा
3. शैक्षणिक भ्रमण
4. खेलकूद की गतिविधियाँ
5. शैक्षणिक उपकरण
6. दंड और पुरस्कार
7. सहपाठियों से तुलना
8. प्रतिस्पर्धा

समस्याएँ –

- शिक्षा सभी जगह उपलब्ध नहीं है।
- शिक्षा की गुणवत्ता कमजोर है।

- प्राथमिक शिक्षा मुख्यतः परिणाम केन्द्रित है।
- मूल्य निर्माण पर अधिक बल नहीं दिया जाता है।
- उच्च शिक्षा का व्यावहारिकरण हो गया है, जिसके कारण शिक्षा रोजगार प्राप्त करने का साधन मात्र बनकर रह गयी।
- शिक्षकों का व्यवहार अनुकूल/ आदर्श नहीं है।

नीतिशास्त्र के आयाम

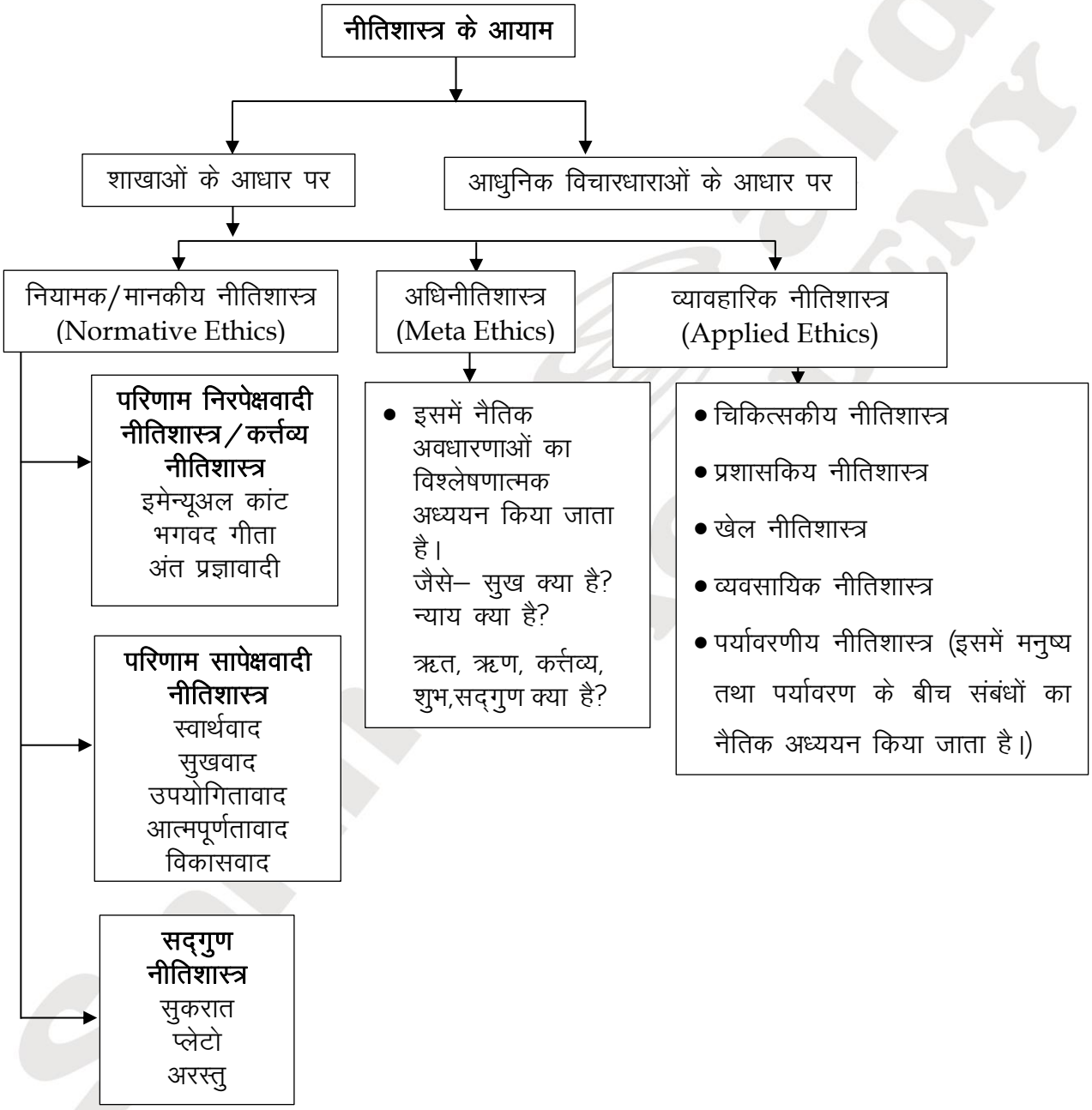

आधुनिक विचारक

1. मार्क्सवादी नीतिशास्त्र –

- मुख्यरूप से मार्क्स समानता का समर्थक है।
- ये सामाजिक न्याय को भी महत्वपूर्ण मानता है।
- इसके अनुसार समाज दो वर्गों में बंटा हुआ है– पूंजीपति वर्ग (बुर्जुआ वर्ग) एवं मजदूर वर्ग (सर्वहारा वर्ग), इन दोनों वर्गों के बीच एक वर्ग संघर्ष चल रहा है।
- वर्तमान के सभी नैतिक नियम पूंजीपति वर्ग के द्वारा बनाए गए है। जिससे की वे अपने हितों की रक्षा कर सके। इन नैतिक नियमों की पुर्नव्याख्या करना आवश्यक है।
  जैसे सामान्यतः हिंसा को अनैतिक माना जाता है, परन्तु समानता की स्थापना के लिए हिंसा आवश्यक है।
- मार्क्स द्वारा सामाजिक संस्थाओं की आलोचना भी की गई है।
  जैसे – धर्म, परिवार, विवाह।

2. नारीवादी नीतिशास्त्र –

- इसके अनुसार समाज पितृसत्तात्मक है इसलिए सभी नैतिक नियम पुरूषों के द्वारा बनाए गए है। इन नैतिक नियमों की पुर्नव्याख्या करना आवश्यक है।
- सामान्यतः जिसे हम मुख्य विचारधारा कहते है वह वास्तविकता मे वह पुरुष विचारधारा है।
- सामान्यतः यह माना जाता है कि निजी जीवन में सरकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए परन्तु नारीवादी के अनुसार अधिकतर शोषणकारी गतिविधियाँ निजी जीवन में होती है। इसलिए निजी जीवन में सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक है।

3. अश्वेत नीतिशास्त्र –

- इनके अनुसार सभी नैतिक नियम श्वेत लोगों द्वारा निर्धारित किए गए है।
- त्वचा के रंग के आधार पर नैतिकता का निर्धारण किया जाता है, इसलिए ऐसे नैतिक नियमों की पुनर्व्याख्या करना आवश्यक है।
- हाल ही में इनके द्वारा एक आन्दोलन चलाया गया 'Black Lives matter'
- इन्होंने अश्वेत लोगों का आह्वान किया कि उन्हें त्वचा के रंग के कारण हीन भावना से ग्रसित नहीं होना चाहिए। इसके लिए एक आन्दोलन चलाया गया–'Black is beautiful'
- इनके द्वारा Fairness Cream का भी विरोध किया गया।

4. फ्रायड का नीतिशास्त्र –

- फ्रायड एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक था। जिसने व्यक्तित्व पर अत्यधिक अध्ययन किया।
- इसके अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क तीन भागों में विभाजित होता है–
  1. चेतन मन
  2. अवचेनत मन/ अर्धचेतन
  3. अचेतन मन

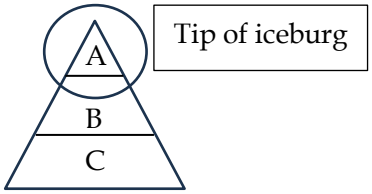

- इसका निर्माण व्यक्ति की मूल प्रवृतियों से होता है। जैसे– भूख लगना, नींद आना, यौन इच्छाएँ।
- फ्रायड के अनुसार इन मूल इच्छाओं से व्यक्तित्व का निर्माण होता है, जिसे इड (Id) कहा जाता है।

- यह सुख के सिद्धान्त पर काम करता है तथा इच्छाओं की तत्काल पूर्ति या संतुष्टि चाहता है, क्योंकि मनुष्य समाज में रहता है इसलिए उसका एक नैतिक व्यक्तित्व भी होता है जिसे सुपर इगो (परा अहम) कहा जाता है।
- यह हमें नैतिक कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।
- इड एवं सुपर इगो के मध्य संघर्ष चलता रहता है जिसके कारण व्यक्तित्व के तीसरे पक्ष का निर्माण होता है जिसे ईगो कहा जाता है।
- यह वास्तविकता पर आधारित है।
- यदि किसी व्यक्ति की इड सशक्त है, तब वह कम नैतिक होता है।

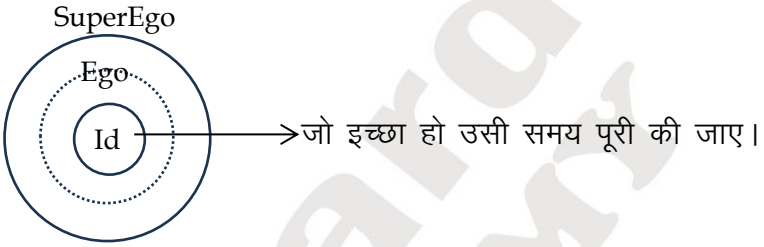

Springboard ACADEMY

पश्चिमी विचारक

सोफिस्ट –

- ये विचारक सुकरात से पूर्व काल में हुए।
- सोफिस्ट शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के ''Sophos'' से हुई जिसका अर्थ 'शिक्षक' है।
- इनके द्वारा युनान के लोगों/ युवाओं को व्यवहारिक जीवन की शिक्षा दी गई है।
- इन्होंने नैतिकता में आत्मनिष्ठता, सापेक्षता और सन्देहवाद पर बल दिया है।
- इनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाएँ, आवश्यकताएँ, क्षमताएँ, योग्यताएँ अलग–अलग होती है। इसलिए वस्तुनिष्ट नैतिक नियम सभी पर थोपे नहीं जा सकते है।
- प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक नियमों का निर्धारण स्वयं करेगा।

इनके प्रमुख विचारक –

1. **प्रोटेगोरस**– इसका प्रसिद्ध कथन है– 'सभी वस्तुओं का मानक मनुष्य है' अर्थात् इसने मुनष्य को सर्वाधिक महत्व दिया।
2. **प्रोडिकस –**
   - इसके अनुसार कोई भी वस्तु, अपने आप में मूल्यवान नहीं है। मनुष्य सभी वस्तुओं को मूल्यवान बनाता है। इसी प्रकार कोई भी सामाजिक नियम अपने आप में मूल्यवान नहीं है। मनुष्य उन्हें मूल्यवान बनाता है।
3. **थ्रेसीमेकस –**
   - इसके द्वारा कानून की आलोचना की गई है।
   - इसके अनुसार कानून शक्तिशाली लोगों की इच्छाएँ है। इसलिए कानून पालन न्याय नहीं अन्याय है।
4. **गॉर्जियास –**
   - इसके अनुसार सभी सत्य आत्मनिष्ठ है, वस्तुनिष्ठ सत्य कुछ भी नहीं है।

सुकरात (Socrates)

- सुकरात के द्वारा सोफिस्टो की आलोचना की गयी, क्योंकि यदि नैतिक नियमों को आत्मनिष्ठ माना गया तब सामाजिक व्यवस्था को स्थापित नहीं किया जा सकता।
- सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए वस्तुनिष्ठ नैतिक नियमों का पालन किया जाना चाहिए।
- मानव जीवन के कल्याण के लिए सद्गुणी जीवन आवश्यक है।
- सुकरात के अनुसार सद्गुण एक है और वह 'ज्ञान' है। **ज्ञान ही सद्गुण है।**
- यहाँ ज्ञान का अर्थ तथ्यात्मक ज्ञान नहीं है। ज्ञान का वास्तविक अर्थ आत्मज्ञान है जिससे सही और गलत के बीच सटीक रूप से भेद किया जा सकता है।
- ज्ञान व्यक्ति के व्यवहार में परिलक्षित होता है। ज्ञानी व्यक्ति कोई भी अनैतिक कार्य नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अनैतिक कार्य कर रहा है तब इसका अर्थ है उसे सही और गलत के बीच भेद नही पता।
- सुकरात के अनुसार ''ज्ञान की शुरूआत अज्ञान से होती है। इसका प्रसिद्ध कथन है'' मुझे मेरे अज्ञान का ज्ञान है।''
- ज्ञान की प्राप्ति के लिए सुकरात की विधि को 'द्वन्दात्मक सिद्धांत' भी कहा जाता है।
- सुकरात के अनुसार अन्य सद्गुण जैसे विवेक, साहस, संयम आदि ज्ञान के ही रूप है इसे सद्गुणों की एकता का सिद्धांत कहा जाता है।
- सद्गुणी जीवन से ही व्यक्ति मानसिक शांति, संतुष्टि और सुख प्राप्त कर सकता है।

सुकरात के कथन –

- किसी से भी दोस्ती धीमें से करो लेकिन जब कर लो तो उस पर दृढ़ और लगातार बने रहो।
- इस दुनिया में सम्मान से जीने का सबसे महान तरीका है कि हम वो बनें जो होने का दिखावा करते है।
- बिना परीक्षा वाली जिंदगी का कोई मूल्य नहीं है।
- जो मनुष्य अपने अवगुण और दूसरों के गुण देखता है, वही महान व्यक्ति बन सकता है।
- ज्ञान को धन से ज्यादा महत्वपूर्ण समझना चाहिए, क्योंकि धन तो नश्वर है, लेकिन ज्ञान शाश्वत है, ज्ञान हमेशा रहता है।
- जागरूकता में ही बुद्धिमता का उदय होता है।

प्लेटो (Plato) –

- यह सुकरात का शिष्य था।
- इसकी संस्था को एकेडमी कहा जाता था।
- इसने नैतिक दर्शन पर अलग से कोई पुस्तक नहीं लिखी।
- राजनीतिक दर्शन के साथ–साथ नैतिक दर्शन का चिन्तन भी किया गया।
- इसकी प्रमुख पुस्तकें–
  1. रिपब्लिक
  2. फिलेबस

प्रमुख सिद्धांत –

1. प्रत्यय का सिद्धांत (Theory of Idea)

- वास्तविकता विचार की छाया है (Reality is the shadow of Idea).
- यह सिद्धांत ज्ञान के वास्तविक स्वरूप समझने के लिए दिया गया है।
- इसके अनुसार वस्तुओं के जगत के बारे में ज्ञान सम्भव नहीं है क्योंकि वस्तुए परिवर्तनशील है।
- वस्तुओं के जगत के बारे में सिर्फ 'मत' संभव है।
- प्रत्ययों के ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान कहा जाता है।
- प्रत्यय वस्तुओं से स्वतंत्र एक अलग जगत में रहते है।
- प्लेटो ने प्रत्यय के जगत की कल्पना की है। प्रत्यय शाश्वत, अनश्वर, वास्तविक, अपरिवर्तनशील होते है।
- वस्तुए नश्वर, अशाश्वत, अवास्तविक व अपरिवर्तनशील है।
- सभी प्रत्ययों को जान लिया जाए, तब सभी सद्गुणों को प्राप्त किया जा सकता है।

2. न्याय का सिद्धांत –

प्लेटो के अनुसार 'सदगुण' 4 है।

1. विवेक/बुद्धिमता 2. साहस 3. संयम 4. न्याय

इनमें से न्याय सबसे महत्वपूर्ण।

व्यक्ति में न्याय–

प्लेटो के अनुसार व्यक्ति की आत्मा के तीन पक्ष होते है।

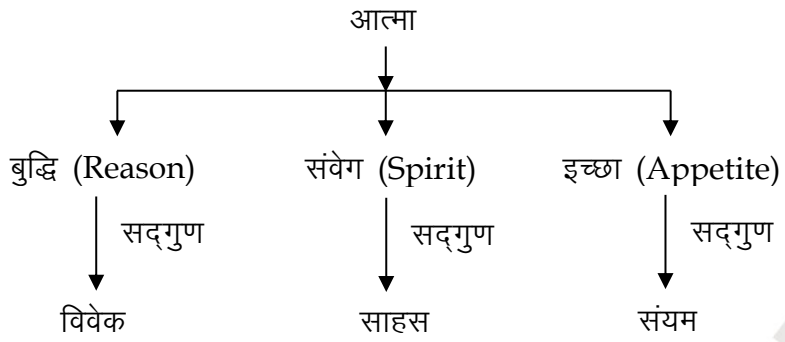

- यदि तीनों सद्गुणों के बीच संतुलन रहता है तथा व्यक्ति प्रधान सद्गुणों के अनुसार आचरण करता है तब व्यक्ति में न्याय की स्थापना होती है।
- विवेक व्यक्ति को सही और गलत के बीच भेद करने की शक्ति प्रदान करता है इसी से व्यक्ति सही निर्णय लेता है।
- साहस व्यक्ति को मुश्किलों और परेशानियों का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है।
- संयम से व्यक्ति अपनी इच्छाओं पर नियत्रंण स्थापित कर सकता है।

न्याय का सिद्धान्त –
- कार्यात्मक विशेषज्ञता – अपनी प्राकृतिक विशेषताओं के आधार पर कार्यों का संपादन करना।
- उचित स्थान (Proper Stationing) – उच्चतम स्थान पर
- अहस्तक्षेप – आत्मा के प्रत्येक भाग को अन्य भाग के साथ हस्तक्षेप किए बिना कार्य करना चाहिए।

समाज में न्याय –

- प्लेटो ने समाज को 3 वर्गों में बाँटा है।

समाज			
वर्ग	1	2	3
सद्गुण	विवेक	साहस	संयम
कार्य	नीति–निर्माण एवं कानून निर्माण	रक्षा	उत्पादन
पेशा	प्रशासनिक सेवा	सेना एवं पुलिस	कृषि, व्यापार, श्रम

- जब प्रत्येक वर्ग अपने निर्धारित कार्य को करता है तथा अन्य कार्य हस्तक्षेप नही करता है तब समाज में न्याय की स्थापना होती है।
- प्लेटो के अनुसार 'वह राज्य न्यायपूर्ण है जिसका राजा दार्शनिक' है। ऐसे राज्य को प्लेटो ने 'यूटोपिया (Utopia) कहा है।

प्लेटो के कथन –

- खुद पर काबू पा लेना ही मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण जीत होती है।
- एक अच्छा निर्णय ज्ञान पर आधारित होता है।
- कम चीजों के साथ जीवन जीना सबसे बड़ी दौलत है।
- आवश्यकता अविष्कार की जननी है।
- काम की शुरूआत करना ही उसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है।

प्लेटो की आलोचनाएँ –

- अरस्तु ने प्रत्ययों के जगत को नकार दिया क्योंकि यह मात्र एक कल्पना है इसे किसी प्रकार से प्रमाणित नहीं किया जा सकता।
- प्रत्ययों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है, वस्तुओं के अन्दर ही इनका अस्तित्व होता है।
- सद्गुणों की संख्या को 4 तक सीमित नहीं किया जा सकता।
- सद्गुण जन्मजात नहीं होते है।
- ज्ञान सदैव व्यवहार से परिलक्षित नहीं होता है।

अरस्तु (Aristotle) -

- अरस्तु प्लेटो का शिष्य था।
- इसे नीति शास्त्र का जनक भी कहा जाता है।
- इसने नीतिशास्त्र पर पुस्तक लिखी– 'निकोमेकियन एथिक्स'
- अरस्तु एक व्यवहारिक विचारक है जो वस्तुओं के जगत को महत्व देता है।
- इसके अनुसार ''जीवन का परम उद्देश्य युडेमोनिया की प्राप्ति करना है। जिसका अर्थ है– आनन्द यह स्वतः साध्य है।
- जब व्यक्ति अपनी क्षमताओं को वास्तविकता में परिवर्तित करता है तब उस आन्नद की अनुभूति होती है।
- आनन्द की प्राप्ति के लिए सद्गुणी जीवन आवश्यक है।
- अरस्तु के अनुसार सद्गुण अनेक है तथा ये जन्मजात नहीं होते है। इन्हें सीखा जाता है।
- सद्गुण को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है।
  - बौद्धिक सद्गुण – इसे अध्ययन से प्राप्त किया जाता है। जैसे– विवेक
  - नैतिक सद्गुण – इसे अभ्यास से प्राप्त किया जाता है। जैसे– साहस व संयम
- सभी गुणों में मध्यम मार्ग सबसे श्रेष्ठ है।
- सभी प्रकार की अतिवादिताओं से बचना मध्यम मार्ग कहलाता है।

  उदाहरण – कायरता और बर्बरता के बीच साहस मध्यम मार्ग है।

  अत्यधिक भोग और सन्यास के बीच संयम मध्यम मार्ग है।

  सब कुछ प्राप्त कर लेने की इच्छा तथा सब कुछ त्याग कर देने के बीच न्याय मध्यम मार्ग है।
- यह सुकरात की इस बात से असहमत है कि ज्ञान व्यवहार में भी परिलक्षित होता है।
- ज्ञानी व्यक्ति भी अनैतिक हो सकता है। नैतिकता के लिए सद्गुणों का अभ्यास आवश्यक है।

अरस्तु की स्वर्णिम मध्य की अवधारणा –

कमी	संतुलन	अधिक
कायरता	साहस	बर्बरता
कंजूस	उदारता	अपव्यय
आलस	महत्वाकांक्षा	ललच
विनम्रता	शील	घमंडी
गोपनीयता	ईमानदारी	बतूनी
रूखापन	अच्छा मजाक	मूर्खता
झगड़ालूपन	मित्रता	चपलूसी

प्लेटो और अरस्तु में तुलना –

प्लेटो	अरस्तु
राजनीतिक दर्शन के पिता	राजनीतिक विज्ञान के पिता
यूटोपियन (आदर्शवादी)	व्यावहारिक
चरम मार्ग	मध्यम मार्ग
दार्शनिक राजा का शासन	विधि का शासन

न्याय का सिद्धान्त –

अरस्तु के अनुसार न्याय को दो प्रकार से बाँटा जा सकता है।

1. प्रतिकात्मक न्याय–

- इसका संबंध राज्य के कानून पालन से है जो व्यक्ति कानून का पालन नहीं करता उसे दण्डित किया जाना चाहिए।
- दण्ड अपराध के अनुपात में दिया जाना चाहिए तथा पीडित पक्ष को क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए।

2. वितरणात्मक न्याय–

- इसका संबंध सम्पति और संसाधनों के वितरण से है।
- संसाधनों का वितरण योग्यता के आधर पर किया जाना चाहिए।
- जिस व्यक्ति का समाज में योगदान अधिक है उसे संसाधन भी अधिक मिलने चाहिए।
- अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए मानव जीवन के कल्याण के लिए मित्रता अत्यधिक आवश्यक है।

इसके अनुसार मित्रता तीन कारणों से होती है–

1. सुख
2. उपयोगिता
3. चरित्र की श्रेष्ठता

- सुख एवं उपयोगिता के कारण मित्रता निम्न कोटी की होती है। इसलिए यह मित्रता अल्पकालिक होती है तथा यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।
- चरित्र की श्रेष्ठता के कारण मित्रता उच्चकोटी की होती है तथा यह दीर्घकालिक होती है।

अरस्तु के कथन –

- क्रान्ति एवं अपराध की जनक गरीबी है।
- अच्छी शुरूआत से ही हमेशा आधा काम हो जाता है।
- लोकतंत्रा तब होगा जब किसी अमीर की जगह कोई गरीब देश का शासक हो।
- चरित्र को हम अपने मन की बात मनवाने का सबसे प्रभावशाली माध्यम कह सकते हैं।
- साहस सभी मानवीय गुणों में प्रथम है, क्योंकि यह वह गुण है जो आप में अन्य गुणों को विकसित करता है।

अन्य विचारधाराएँ –

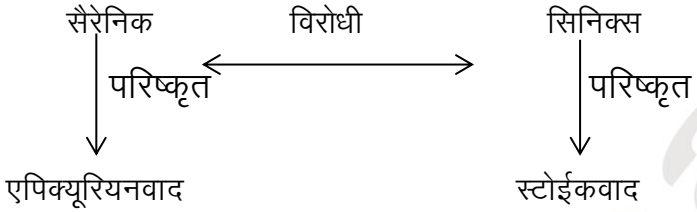

1. सैरेनिक –

- ये स्वयं को सुकरात का शिष्य मानते है।
- ये युनान के 'सिरीन' शहर में हुए इसलिए इन्हें सैरेनिक कहा जाता है।
- संस्थापक– एरिस्टिपस
- यह एक सुखवादी विचारधारा है अर्थात् वे कार्य नैतिक है जिनका परिणाम सुख होता है।
- यह मनोवैज्ञानिक सुखवाद को स्वीकार करते है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वार्थी है तथा वह स्वयं का सुख चाहता है।
- मनोवैज्ञानिक सुखवाद से नैतिक सुखवाद की स्थापना की गई है।
- नैतिक सुखवाद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है इसलिए सुख प्राप्त करने के लिए किए गए कार्य नैतिक होते है।
- यह मानसिक सुख की बजाय शारीरिक सुख का अधिक महत्व देते है इसलिए इस सुखवाद को स्थूल सुखवाद कहा जाता है।
- भारत में इसकी समान्तर विचारधारा चार्वाक का दर्शन है।

2. सिनिक्स –

- यह सैरेनिक्स की विरोधी विचारधारा है।
- सिनिक्स का शाब्दिक अर्थ – ''कुत्ते की तरह''
- इसका संस्थापक – एन्टीस्थनीस
- प्रमुख विचारक – डायोजिनस
- इनके अनुसार व्यक्ति को सुख की कामना नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इससे व्यक्ति इच्छाओं का गुलाम हो जाता है। इच्छाओं का गुलाम होने से अच्छा है पागल हो जाना।
- मानव जीवन के कल्याण के लिए सशक्त चरित्र के साथ सद्गुणी जीवन जीना चाहिए।
- चरित्र निर्माण के लिए आत्मसंतुष्टि, आत्मनियंत्रण, कठोरता और गरीबी से जीवन जीना चाहिए।

3. एपिक्यूरियनवाद –

- संस्थापक – एपिक्यूरस
- यह सुखवादी विचारधारा है।

- यह मनोवैज्ञानिक सुखवाद और नैतिक सुखवाद को स्वीकार करते है परन्तु यह शारीरिक सुख की बजाय मानसिक सुख को अधिक महत्व देते है।
- शारीरिक सुख अल्पकालिक होता है तथा इसका परिणाम दुःख होता है, जबकि मानसिक सुख दीर्घकालिक होता है तथा इसका परिणाम भी सुख होता है।
- मानसिक सुख प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को कला, संगीत, दर्शन, साहित्य आदि का अध्ययन करना चाहिए। उसे अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करना चाहिए।

इच्छाएँ दो प्रकार की होती हेः–

अनिवार्य इच्छाएँ

- इन इच्छाओं की पूर्ति की जानी चाहिए।
  उदा –भूख, प्यास, नींद।

अनावश्यक/ कृत्रिम इच्छाएँ

- धन प्राप्त करने की इच्छा
- पद प्राप्त करने की इच्छा
- सत्ता प्राप्त करने की इच्छा
- इन इच्छाओं का नियंत्रित किया जाना चाहिए।
- मानसिक शांति के लिए व्यक्ति को भय से मुक्त होना चाहिए।

दो प्रकार के भय होते है–

1. मृत्यु का भय
2. ईश्वर का भय
   - यह दोनों भय अज्ञान और अंधविश्वास के कारण होते है।

4. स्टोइकवाद –

- यह सिनिक्स की परिष्कृत विचारधारा है।
- संस्थापक – जेनो
- इसके घर को 'स्टॉ' कहा जाता था।
- अन्य मुख्य विचारक – सेनेका, एपिकटेटस, मार्कस, ऑरियिलस
- इसके अनुसार मानव जीवन के कल्याण के लिए सद्गुणी जीवन जीना चाहिए।
- मनुष्य को प्रकृति के अनुसार जीवन जीना चाहिए। भावनाओं पर नियंत्रण स्थापित करना चाहिए।
- सुख व दुःख में समान भाव होने चाहिए।
- व्यक्ति को सिर्फ उन गतिविधियों के बारे में चिंतन करना चाहिए जो कि उसके नियंत्रण में है, जो चीजे नियंत्रण में नहीं है उन्हें प्रकृति या नियति के भरोसे छोड़ देना चाहिए।
- समाज और प्रकृति की घटनाओं को उसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए।
- इनके अनुसार हम वास्तविकता के बजाय कल्पनाओं में अधिक दुःखी होते है।
- यह नियतिवाद को स्वीकार करते है। किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते है।

परिणाम सापेक्ष नीतिशास्त्र की विचारधाराएँ

1. स्वार्थवाद –

- स्वार्थवाद का मुख्य विचारक थॉमस हॉब्स है।
- यह मनोवैज्ञानिक स्वार्थवाद और नैतिक स्वार्थवाद को स्वीकार करता है।

मनोवैज्ञानिक स्वार्थवाद –

- प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वार्थी है तथा वह स्वयं के हितो की पूर्ति चाहता है।

नैतिक स्वार्थवाद–

- प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के हितों की पूर्ति चाहता है इसलिए वे कार्य नैतिक है जिससे स्वयं के हितों की पूर्ति होती है।
- यहाँ मूल प्रश्न है यदि व्यक्ति स्वार्थी है तब वह राज्य के नियमों और कानूनों का पालन क्यों करता है।
- हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में कोई राज्य नामक संस्था नहीं थी। इसलिए व्यक्ति सिर्फ अपने संकीर्ण हितों के लिए कार्य कर रहा था। इसके कारण सभी को हानि हो रही थी। अतः सभी लोगों ने मिलकर एक सामाजिक समझौता किया तथा राज्य नामक संस्था की स्थापना की गई। जो की मनुष्य के सामूहिक हितों की रक्षा करता है।

2. सुखवाद –

- वे कार्य नैतिक है जिसका परिणाम सुख होता है।

सुखवाद के प्रकार –

1. मनोवैज्ञानिक सुखवाद
2. नैतिक सुखवाद
3. स्वार्थमूलक सुखवाद–वे कार्य नैतिक है जिससे स्वयं का सुख बढ़ता है तथा दुख कम होता है।
4. परार्थमूलक सुखवादः–वे कार्य नैतिक है जिससे अधिक लोगों का अधिकतम सुख सुनिश्चित होता है।
5. निकृष्ट सुखवाद–ये सुखों में मात्रात्मक भेद को स्वीकार करते है, अर्थात सुख कम या ज्यादा हो सकता है, उच्च व निम्न कोटि का नहीं।
6. उत्कृष्ट सुखवाद–ये सुखों में गुणात्मक भेद को स्वीकार करते है।

3. उपयोगितावाद –

इनके अनुसार वे कार्य/ नियम नैतिक है जो कि उपयोगी है।

उपयोगितावाद के प्रकार–

i. **कर्म संबंधी उपयोगितावाद**
   - इनके अनुसार किसी भी कर्म को करने से पहले इसकी उपयोगिता का निर्धारण किया जाना चाहिए तथा वे कर्म किये जाने चाहिए जो उपयोगी हो।

ii. **नियम संबंधी उपयोगितावाद**
   - इनमें कर्म की जगह नियम की उपयोगिता का निर्धारण किया जाता है तथा जो नियम उपयोगी है, उसका प्रयोग सभी कर्मों में किया जाता है।

iii. **आदर्श मूलक उपयोगितावाद**
   - इसके अनुसार वे कर्म उपयोगी है जिससे किसी आदर्श की प्राप्ति होती हो। जैसे – न्याय, समानता, स्वतंत्रता, धार्मिक आदर्श।

iv. **सुखमूलक उपयोगितावाद**
   - वे कार्य उपयोगी है जिससे सुख में वृद्धि होती हो दुख में कमी हो।

मुख्य विचारक

1. जेरेमी बेन्थम

- यह इग्लैण्ड का प्रमुख विचारक था।
- इसी के द्वारा उपयोगितावाद दिया गया।

- इसके अनुसार ''वे कार्य/ नियम नैतिक होते है, जो कि उपयोगी है।''
- उपयोगिता का निर्धारण सुख से प्राप्त किया जाता है, अर्थात् यह सुखमूलक उपयोगितावाद का समर्थक है।
- बेन्थम मनोवैज्ञानिक सुखवाद को स्वीकार करता है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वार्थी है तथा वह स्वयं का सुख चाहता है। इसी आधार पर यह नैतिक सुखवाद और परार्थमूलक सुखवाद की स्थापना करता है। अर्थात् वे कार्य नैतिक है जिससे 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' सुनिश्चित होता है।
- मनोवैज्ञानिक सुखवाद और पराथमूलक सुखवाद में विरोधाभास है, क्योंकि यदि व्यक्ति जन्म से ही स्वार्थी है तब वह अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख के लिए कार्य क्यों करेगा।
- इस विरोधाभास को दूर करने के लिए बेन्थम के द्वारा चार बाहरी दबावों का सिद्धांत दिया।

i. **भौतिक दबाव**

- प्रत्येक व्यक्ति की भौतिक क्षमता सीमित है। इसलिए उसे दूसरों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है।

ii. **सामाजिक दबाव**

- जब व्यक्ति दूसरों के लिए कार्य करता है तब उसे समाज से प्रशंसा मिलती है अन्यथा निन्दा।

iii. **राजनीतिक दबाव**

- राज्य द्वारा कानूनों व नियमों का निर्माण किया जाता है यदि कोई व्यक्ति कानूनों का उल्लघंन करता है तब राज्य उसे दण्डित करता है।

iv. **धार्मिक दबाव**

- धर्म में पाप, पुण्य, स्वर्ग, नर्क आदि की अवधारणाए होती है तथा व्यक्ति को ईश्वर का भय भी रहता है जिसके कारण वह अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख के लिए कार्य करता है।
- यह एक निकृष्ट सुखवादी है। अर्थात् सुख में सिर्फ मात्रात्मक भेद को स्वीकार करता है।
- सुख को मापने के लिए 'सुखकलन का सिद्धांत' दिया गया है।
- सुख को 7 कारकों के आधार पर मापा जा सकता है।

1. निकटता
2. निश्चित्तता
3. तीव्रता
4. उत्पादकता – सुख का परिणाम सुख होना चाहिए।
5. अवधि
6. शुद्धता– सुख में दुख का मिश्रण नहीं होना चाहिए।
7. व्यापकता – अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख।

- बेन्थम के अनुसार सुख की गणना करते समय प्रत्येक व्यक्ति को एक इकाई के रूप में ही माना जाना चाहिए।

बेन्थम के कथन –

- सभी मानवीय गुणों में सबसे दुर्लभ ''संगति''
- धर्म विभाजित एक शहर पहले से ही खंडहर है या उसके करीब है।
- वह सारी खुशियाँ प्राप्त करें जो आप पैदा कर सकते हैं, उन सभी दुखों को दूर करें जिन्हें आप दूर करने में सक्षम हैं।

2. जॉन स्टुअर्ट मिल

- यह बेन्थम का शिष्य था।
- यह एक उपयोगितावादी विचारक है।

- यह सुख मूलक उपयोगितावाद को स्वीकार करता है। अर्थात् वे कार्य/नियम उपयोगी है जिससे सुख की अनुभूति होती है।
- यह मनोवैज्ञानिक सुखवाद को मानता है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वयं के सुख की इच्छा करता है। इसलिए सुख स्वतः वांछनीय है। इस प्रकार यह नैतिक सुखवाद की स्थापना करता है।
- यह परार्थमूलक सुखवाद को स्वीकार करता है अर्थात् वे कार्य / नियम नैतिक है जिससे अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख निश्चित होता है।
- यहाँ मनोवैज्ञानिक सुखवाद और परार्थमूलक सुखवाद में विरोधाभास है। इस विराधोभास को खत्म/ दूर करने के लिए बेन्थम के द्वारा बताए गए चार बाहरी दबावों को स्वीकार करता है, परन्तु एक पाँचवे 'आंतरिक दबाव' को भी स्वीकार करता है।
- व्यक्ति सामाजिक भावना से प्रेरित होता हे जब वह दूसरों को पीड़ा में देखता है तब उसे स्वयं को भी पीड़ा का अनुभव होता है परन्तु जब वह दूसरों के हितों के लिए कार्य करता है तब उसे आन्तरिक सन्तुष्टि महसूस होती है।
- मिल एक उत्कृष्ट सुखवादी है क्योंकि यह सुखों में मात्रात्मक भेद के साथ–साथ गुणात्मक भेद को भी स्वीकार करता है।
- इसका प्रसिद्ध कथन – 'एक सन्तुष्ट सुअर से एक असन्तुष्ट मनुष्य बेहतर है तथा एक सन्तुष्ट मुर्ख से एक असन्तुष्ट सुकरात बेहतर है।'

मिल के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार

- मिल ने स्वतंत्रता पर एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था– On Liberty

मिल ने स्वतंत्रता को दो भागों में विभाजित किया–

1. विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
   - यहाँ मिल पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक है अर्थात् इसमें राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
2. कार्य करने की स्वतंत्रता– कार्यों को दो भागों में विभाजित किया गया है–
   i. स्वयं को प्रभावित करने वाले कार्य जैसे–नींद, कपड़े।
      - यहाँ मिल पूर्ण स्वतंत्रता का सर्मथक है।
      - राज्य के हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करता।
   ii. अन्य को प्रभावित करने वाले कार्य–
      - यहाँ मिल पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक नहीं है तथा राज्य के हस्तक्षेप को न्यायोचित मानता है।

मिल के कथन –

- लड़ना गलत नहीं है लेकिन लड़ने की सोच रखना सबसे गलत है।
- जब दो या दो से ज्यादा लोग बात–चीत करते हैं तो वे जिन बातों में विश्वास करते हैं तो उन्हें सही और जिन बातों को न पसंद करते हैं उन्हें गलत साबित करने में डर जाते हैं।

उपयोगितावाद की आलोचनाएँ–

1. सुख एक आत्मनिष्ठ अवधारणा है, इसलिए सुख को परिभाषित नहीं किया जा सकता।

2. यदि व्यक्ति बार–बार सुख के बारे में चिन्तन करता है तब उसे सुख प्राप्त नहीं होता है। अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख से अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा नहीं होती है।
3. दबाव में किए गए कार्य नैतिक नहीं होते है।
4. सुख को मापा नहीं जा सकता।
5. मिल ने सुखों में गुणात्मक भेद को स्वीकार किया परन्तु उस गुण की व्याख्या नहीं की जो कि किसी एक सुख को निकृष्ट तथा दूसरे को उत्कृष्ट बनाता है।
6. नैतिक सुखवाद में 'प्रकृतिवादी दोष' है। अर्थात् मनुष्य की प्राकृतिक प्रवृतियों को नैतिक ठहराया नहीं जा सकता। (यह आलोचना डेविड ह्यूम द्वारा की गई)
7. तथ्यात्मक कथन से नैतिक निर्णय तक नहीं पहुंचा जा सकता।
8. ''सभी लोग सुख चाहते है यह एक तथ्यात्मक कथन है। सुख प्राप्त करने के लिए किए गए कार्य नैतिक है। यह एक नैतिक निर्णय है।''

4. विकासवाद (Evolutionism)

प्रमुख विचारक –

i. हर्बट स्पेन्सर
ii. लेस्ली स्टीफन
iii. सैम्यूअल अलेक्जेंडर

i. हर्बट स्पेन्सर –

- विकासवाद का सिद्धांत डार्विन के द्वारा दिया गया जिसके अनुसार संसार सरलता से जटिलता, एकता से अनेकता की ओर अग्रसर हो रहा है तथा इसमें जीवों के बीच संघर्ष चलता रहता है। वे जीव अस्तित्व में रहते है जो स्वयं को वातावरण के परिवर्तनों के अनुकूल बना लेते है। इसे 'योग्यतम की उत्तरजीवित्तता का सिद्धांत' कहा जाता है।
- स्पेन्सर ने डार्विन के जैविक विकासवाद के सिद्धांत को नैतिकता पर लागू कर दिया।
- इसके अनुसार नैतिकता पर भी संघर्ष चलता रहता है।
- वे नैतिक नियम अस्तित्व में रहते हैं जो मनुष्य की आवश्यकता, इच्छा और सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।
- वे कृत्य नैतिक होते है जो की बाहरी वातावरण /समाज के परिवर्तनों के अनुकूल होते है। ऐसे कृत्यों से मनुष्य को सुख मिलता है। इसलिए इसे ''सुखमूलक विकासवाद'' कहा जाता है।
- स्पेन्सर के अनुसार नैतिकता दो प्रकार की होती है–

सापेक्ष नैतिकता	निरपेक्ष
यह नैतिकता का निम्न स्तर है।	यह पूर्ण नैतिकता की स्थिति है।
इसमें व्यक्ति के सामाजिक हितों व व्यक्तिगत हित विरोधाभाषी होते हैं।	इसमें व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है कि व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित विरोधाभाषी नहीं है।
वह व्यक्तिगत हितों को अधिक महत्व देता है।	सामाजिक हितों से ही व्यक्तिगत हितों की पूर्ति होती

	है। इसलिए व्यक्ति सामाजिक हितों को प्राथमिकता देता है।
सामाजिक हितों की पूर्ति के लिए राज्य के द्वारा कानून का निर्माण किया जाता है।	वर्तमान में यह स्थिति नहीं है, लेकिन भविष्य में इसे प्राप्त किया जाएगा।

- स्पेन्सर के अनुसार हमें भूतकाल के नैतिक नियमों की आलोचना नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह नैतिकता का एक स्तर था यदि वह स्तर न होता तो वर्तमान की नैतिकता भी संभव नहीं थी। भविष्य के नैतिक नियम और अधिक श्रेष्ठ होगें।
- कुछ विचारकों के अनुसार व्यक्ति जन्म से ही स्वार्थी तथा कुछ अन्य विचारकों के अनुसार व्यक्ति जन्म से ही परार्थी है लेकिन स्पेन्सर के अनुसार व्यक्ति में स्वार्थ और परार्थ दोनों के ही गुण होते है। तथा दोनों की आवश्यकता है।
- स्पेन्सर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थक है परन्तु यह दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा नही होनी चाहिए।
- इसके अनुसार संसाधनों का वितरण मैरिट के आधार पर किया जाना चाहिए परन्तु कमजोर वर्ग को संरक्षण भी प्रदान किया जाना चाहिए।

स्पेन्सर के कथन –

1. प्यार जिंदगी का अंत है, लेकिन कभी खत्म नहीं होता प्यार जीवन की दौलत है, कभी खर्च नहीं होती।
2. जीवन बाहरी संबंधों के आंतरिक संबंधों का निरंतर समायोजन है।
3. हम सभी पूर्वाग्रह को मिटाते है फिर भी सभी पूर्वाग्रह से ग्रसित है।
4. चरित्र निर्माण के लिए शिक्षा के पास अपनी वस्तु है।
5. शिक्षा का महान उद्देश्य ज्ञान नहीं बल्कि कार्यवाई है।

ii. लेस्ली स्टीफन –

- यह मुख्यतः स्पेन्सर के विचारों से सहमत है परन्तु दो मुख्य असहमतियां है–
  1. स्पेन्सर व्यक्ति व समाज के बीच 'यांत्रिक संबंध' को स्वीकार करता है। अर्थात् वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व देता है। परन्तु स्टीफन ने व्यक्ति व समाज के बीच '**सावयवी संबंध**' को स्वीकार किया। अर्थात् व्यक्ति और समाज के बीच वही संबंध है जो शरीर और उसके अंग के बीच है। शरीर से अलग अंग का कोई अस्तित्व नहीं है। शरीर की रक्षा के लिए अंग का त्याग भी किया जा सकता है इसी प्रकार समाज की रक्षा के लिए व्यक्ति का त्याग भी किया जा सकता है। अर्थात् यह समाज को अधिक महत्व देता है।
  2. यह निरपेक्ष नैतिकता की आलोचना करता है क्योंकि इसके अनुसार यह एक काल्पनिक स्थिति है वास्तविकता में इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

स्टीफन के कथन –

1. असत्य की निंदा किए बिना सत्य की पुष्टि नहीं की जा सकती।
2. Genius is a Capacity for taking trouble.

iii. सैम्युअल एलेक्जेंडर

- इसके अनुसार नैतिकता का विकास धीरे–धीरे हो रहा है, यदि नैतिक नियमों में संघर्ष होता है तब वे नैतिक नियम अस्तित्व में रहते है जो कि अधिक तार्किक होते है।
- समाज की तार्किकता का स्तर धीरे–धीरे बढ़ता है, परंतु कुछ लोगों की तार्किकता का स्तर समाज की तार्किकता के स्तर से अधिक होता है। उनके द्वारा कहे गये विचार समाज में स्वीकार्य नहीं होते है। इसलिए उनका विरोध किया जाता है तथा कुछ मामलों में उनकी हत्यायें भी कर दी जाती है। जैसे– सुकरात।

एलेक्जेंडर के कथन –

1. लगातार कोशिश करने वालों के लिए कुछ भी असंभव नहीं है।
2. हर आने वाला प्रकाश सूरज नहीं है।
3. बड़ा करने की सोचें तभी बड़ा पा सकोगे।

5. आत्मपूर्णतावाद (Perfectionism)

प्रमुख विचारक–

i. हीगल
ii. ब्रेडले

i. हीगल

- यह एक प्रत्ययवादी विचारक है।
- इसके अनुसार जगत का परम तत्व निरपेक्ष प्रत्यय है जो कि पूर्णतः चेतन्य है।
- जड़ वस्तुओं में भी निरपेक्ष प्रत्यय उपस्थित है। परन्तु यह अभिव्यक्ति अवस्था में नहीं है। जैसे अभिव्यक्ति का स्तर बढ़ता जाता है विकास का स्तर भी बढ़ता जाता है।
- वर्तमान में विकास का स्तर मनुष्य तक पहुंचा है।
- निरपेक्ष प्रत्यय की पूर्ण अभिव्यक्त अवस्था ही ईश्वर कहलाती है।

चेतना की अभिव्यक्ति का स्तर

जड़ तत्व → वनस्पति → जीव जन्तु → मनुष्य → ईश्वर

हीगल के अनुसार नैतिकता के बीच तीन स्तर है–

I. प्रारम्भिक स्तर –

- यह नैतिकता का निम्नतम स्तर है। क्योंकि नैतिकता आत्मनिष्ठ होती है।
- प्रत्येक व्यक्ति अपनी ईच्छाओं, भावनाओं ओर आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करता है लेकिन इससे सामाजिक व्यवस्था स्थापित नहीं की जा सकती। इसलिए नैतिकता बाहर से आरोपित की जाती है।
- राज्य के द्वारा कानून का निर्माण किया जाता है। दण्ड का प्रावधान किया जाता है।
- सामाजिक नियम ईश्वर का भय आदि का प्रयोग भी किया जाता है।

II. आत्म प्रेरणा की स्थिति –

- यह वस्तुनिष्ठ नैतिकता की स्थिति है। इसमें नैतिकता बाहर से आरोपित नहीं की जाती है। व्यक्ति आत्म प्रेरणा से नैतिक नियमों का पालन करता है परन्तु इस स्थिति में कभी–कभी व्यक्ति को सामाजिक हित व व्यक्तिगत हितों में टकराव महसूस होता है।

III. अन्तिम अवस्था –

- यह पूर्ण नैतिकता की स्थिति है।

- व्यक्तिगत हितों व सामाजिक हितों का एकीकरण हो जाता है।
- व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि व्यक्तिगत हित व सामाजिक हित विरोधाभासी नहीं है।
- सामाजिक हितों से ही व्यक्तिगत हितों की पूर्ति होती है।
- इसलिए व्यक्ति सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करता है।

हीगल का द्वंन्दात्मक सिद्धांत –

- यह सिद्धांत विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए दिया गया है।
- कोई भी व्यवस्था या विचार सर्वप्रथम वाद के रूप में अस्तित्व में आते है।
- इसमें कुछ अपूर्णता होती है इसलिए प्रतिवाद अस्तित्व में आता है।
- वाद और प्रतिवाद के बीच संघर्ष होता है तथा एक संवाद अस्तित्व में आता है।
- यह भी अपूर्ण है। अतः यह पुनः वाद बन जाता है और पुनः प्रतिवाद व संवाद अस्तित्व में आते है।
- यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं कर लिया जाए।

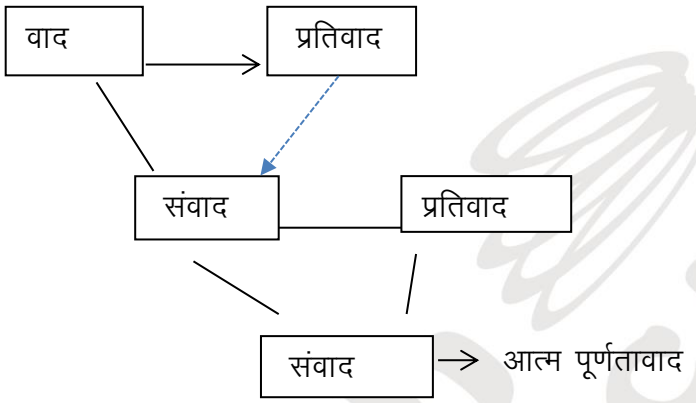

- द्वन्दात्मक सिद्धांत का प्रयोग राज्य के अस्तित्व की व्याख्या करने के लिए किया गया।

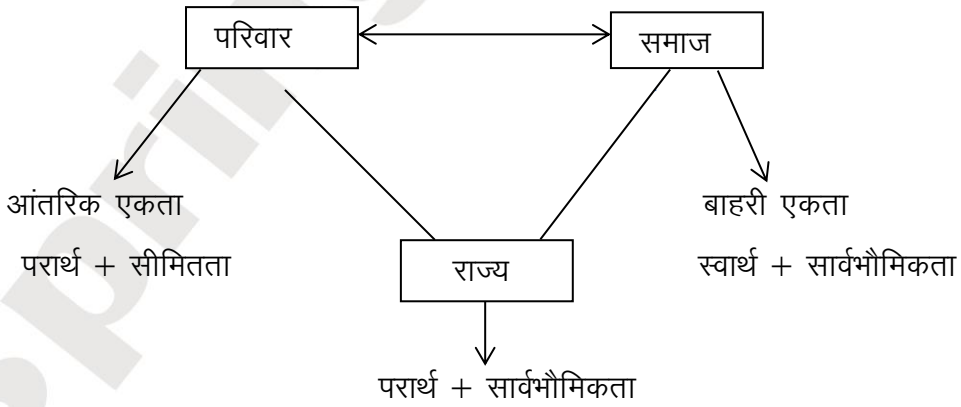

- हिगल के अनुसार राज्य पूर्ण नैतिक संस्था है। इसनें राज्य की तुलना ईश्वर से की है।

  इसका प्रसिद्ध कथन–

  ''राज्य धरती पर ईश्वर का अवतार है।''

  अर्थात् हिगल व्यक्ति की बजाय राज्य को ज्यादा महत्व देता है।

हिगल के प्रमुख कथनों की व्याख्या –

हिगल के नैतिक दर्शन को समझने के लिए दो कथनों की व्याख्या की गई है।

a. जीने के लिए मरो (Die to live)

- इस कथन की व्याख्या ईसाई धर्म में की गई है, जिसके अनुसार जीने का अर्थ है आत्मा का विकास तथा मरने का अर्थ है शारीरिक पक्ष का दमन। अर्थात् भावनाओं और इच्छाओं का दमन। परन्तु हिगल ने इन व्याख्याओं को स्वीकार नहीं किया है।
- हिगल के अनुसार भावनाओं व इच्छाओं की तृप्ति बुद्धि के अधीन की जानी चाहिए।

b. मनुष्य बनो (Be a Man)

- प्रत्येक मनुष्य को अपने व्यक्तित्व को पूर्ण व स्वतंत्र निर्माण करना चाहिए। उसे दूसरे मुनष्यों का सम्मान करना चाहिए तथा दूसरों के जीवन में भी योगदान किया जाना चाहिए।

हीगल के कथन –

1. दुनिया में कोई काम भी धैर्य के पुरा नही हुआ है।
2. सीखने वाले चीजों में कमियां तलाशकर शुरूआत करते है, जबकि सिखाने वाले उसमें से सकारात्मक चीज निकालकर सामने रखते है।
3. आत्मबल का प्रकाश ही आपको हमेशा सही राह पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।
4. सबसे बड़ी बात इंसान के हर प्रयास का निचोड़ और उसकी आत्मा की पूरी ताकत एक शब्द में है–आजादी

ii. **ब्रेडले –**

- यह हीगल की तरह आत्मपूर्णतावाद को स्वीकार करता है।
- पूर्ण चेतन्य की अवस्था ही आत्मपूर्णता है। इसी में व्यक्ति आत्म साक्षात्कार व आत्म ज्ञान को प्राप्त करता है।
- ब्रेडले ने इसे पूर्ण नैतिकता की अवस्था माना है।
- इससे व्यक्ति सामाजिक हितों के लिए कार्य करता है तथा इसी से व्यक्तिगत हितों की पूर्ति मानता हे।
- यह आत्म सिद्धी और आत्म त्याग में भेद नहीं मानता है। क्योंकि आत्म त्याग से व्यक्ति सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करेगा और सामाजिक कल्याण में ही व्यक्तिगत कल्याण निहित है।
- इसके द्वारा एक प्रसिद्ध निबंद्ध लिखा गया जिसका शीर्षक **'मेरा स्थान मेरा कर्त्तव्य'**।
- इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता, योग्यता व क्षमता की पहचान करनी चाहिए तथा उसी के आधार पर समाज में अपनी भूमिका से जुड़े हुए कर्त्तव्यों का निर्वहन निस्वार्थ भाव से किया जाना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि भूमिका बड़ी है या छोटी। समाज के कल्याण में सभी का योगदान होता है। जिस प्रकार मशीन के कार्य करने में सभी कलपूर्जों का योगदान होता है।

6. अस्तित्ववाद (Existentialism)

1. सोरेन किर्केगार्ड –

- यह एक धार्मिक विचार है। जिसने मनुष्य के अस्तित्व को अत्यधिक महत्व दिया है।
- इसने भौतिकतावाद की आलोचना की है।
- इसके अनुसार ''मनुष्य भौतिक वस्तुओं से सुख प्राप्त करना चाहता है तथा वह अत्यधिक भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है तथा जिसके कारण मनुष्य की भावनाएँ धीरे –धीरे समाप्त होती जा रही है।''

- मनुष्य ने अपनी पहचान भी भौतिक वस्तुओं से ही बना ली है। इसके कारण मनुष्य का अस्तित्व खतरे में है। मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा करने के लिए भौतिकतावाद को नकार दिया जाना चाहिए।

किर्केगार्ड ने जीवन के तीन स्तर माने है–

- **पहला स्तर–** इसमें व्यक्ति भौतिक वस्तुओं से सुख प्राप्त करना चाहता है। परन्तु शीघ्र ही उसे ज्ञान होता है कि भौतिक वस्तुएं उसे लम्बे समय तक संतुष्ट नहीं कर सकती है।
- **दूसरा स्तर –** इसमें व्यक्ति समाज के लिए कार्य करता है जिससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है। परन्तु दीर्घकाल के लिए यह भी शांति प्रदान नही कर सकती।
- **तीसरा स्तर –** इसमें व्यक्ति आध्यात्मिक बन जाता है तथा वह ईश्वर की शरण में चला जाता है। जिससे उसे दीर्घकालिक शांति मिलती है।

2. ज्यां पॉल सार्त्र–

- यह एक व्यक्तिवादी विचारक है जो मनुष्य के अस्तित्व को अधिक महत्व देता है।
- पहले मनुष्य अस्तित्व में आता है फिर अपने सार तत्व का निर्माण करता है।
- इसने मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा के लिए ईश्वर के अस्तित्व को नकार दिया।
- मनुष्य अपने सार तत्व का निर्माण अपने निर्णयों से करता है। वह निर्णय लेने के लिए सदैव स्वतंत्र है।

सार्त्र के प्रसिद्ध कथन–

- मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है अर्थात् वह चाहकर भी अपनी स्वतंत्रता को त्याग नही सकता।
- निर्णयों के साथ उत्तरदायित्व जुड़े हुए होते है इसलिए मनुष्य निर्णय लेने से घबराता है क्योंकि उसे यह डर है कि उसे उसके निर्णयों के लिए उत्तरदायी ठहराया जायेगा। इसलिए वह एक झूठा जीवन जीने लगता है। जिससे मनुष्य का अस्तित्व खतरे में है।
- मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा करने के लिए मनुष्य को अपने निर्णय स्वयं लेने चाहिए तथा उन निर्णयों की जिम्मेदारी भी लेनी चाहिए।

इसके अनुसार जगत में दो मुख्य तत्व है–

1. मनुष्य– यह सदैव स्वतंत्र है तथा अपने निर्णय स्वयं लेता है।
2. वस्तु – यह सदैव परतंत्र है। इसकी उपयोगिता मनुष्य के द्वारा निर्धारित की जाती है।
    - यदि कोई व्यक्ति अपने निर्णय स्वयं नहीं लेता है तब इसका अर्थ है कि उस मनुष्य ने स्वयं को वस्तु में परिवर्तित कर दिया है।
    - इसके अनुसार वे संबंध नैतिक है जिनमें टकराव होता है। क्योंकि यह स्वभाविक है कि दो लोगों में वैचारिक मत भेद हो सकता है। यदि ऐसा नहीं है तब एक व्यक्ति ने स्वयं को वस्तु में परिवर्तित कर दिया है।

परिणाम निरपेक्षवाद नीतिशास्त्र–

1. इमेन्यूअल कांट–

- यह जर्मनी का प्रमुख विचारक है।
- यह परिणाम निरपेक्षवादी नीतिशास्त्री है।
- इसके अनुसार किसी भी कार्य का मूल्यांकन परिणाम के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए।
- कार्य का मूल्याकंन संकल्प के आधार पर किया जाना चाहिए।

संकल्प दो प्रकार के होत है–

शुभ संकल्प– वे संकल्प जो की कर्त्तव्य चेतना से प्रेरित है।

- शुभ संकल्पों से किए गए कार्य नैतिक है अर्थात् वे कार्य नैतिक है, जो कि कर्त्तव्य चेतना से किए गए है।

अशुभ संकल्प – वे संकल्प जो लाभ–हानि या भावनाओं से प्रेरित है।

- अशुभ संकल्पों से किए गए कार्य अनैतिक है।

निरपेक्ष आदेश–

- यह कांट के नीतिशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है।
- कांट के अनुसार नैतिक नियमों का पालन निरपेक्ष आदेश के रूप में किया जाना चाहिए।
- यहाँ आदेश का अर्थ है– नैतिक नियमों का पालन कठोरता से किया जाना चाहिए।
- नैतिक नियम किसी की इच्छा या सलाह पर निर्भर नहीं करते है।
- निरपेक्ष का अर्थ है नैतिक नियम का पालन किसी उच्चतर उद्देश्य के लिए नहीं किया जाना चाहिए। अर्थात् कर्त्तव्य का पालन ही कर्त्तव्य है।
- कांट का प्रसिद्ध कथन– ''कर्त्तव्य, कर्त्तव्य के लिए।''

सापेक्ष आदेश –

- जब नैतिक नियमों का पालन किसी उच्चतर उद्देश्य के लिए किया जाता है।
- कांट इसका समर्थन नहीं करता।

नैतिकता के सूत्र –

- नैतिक नियमों का निर्माण करते समय निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

1. सार्वभौमिकता का नियम –

- नैतिक नियम देश काल परिस्थिति और व्यक्ति के सापेक्ष नहीं होने चाहिए।
- उसी नियम को नैतिक नियम के रूप में अपनाया जा सकता है जिसको सभी पर लागू किया जा सकता है। इसमें कोई अपवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

2. मुनष्य को साध्य मानने का नियम –

- सभी जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ है।
- मुनष्यता मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है। इसलिए मनुष्यता का सम्मान किया जाना चाहिए। अतः किसी भी मनुष्य को साधन के रूप में प्रयोग में नहीं लिया जाना चाहिए प्रत्येक मनुष्य अपने आप में एक साध्य है।

3. स्वाधीनता का नियम –

- प्रत्येक मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र है। इसलिए कोई नैतिक नियम बाहर से आरोपित नहीं किया जाना चाहिए नैतिक नियम का निर्धारण व्यक्ति को स्वयं करने चाहिए।

4. साध्यों के राज्य विधायक –

- यह कोई अलग से नैतिक नियम नहीं है। यह उपर्युक्त तीनों नैतिक नियमों का समावेशन है अर्थात् किसी भी नैतिक नियमों को त्यागा नहीं जा सकता।
- यहाँ विधायक का अर्थ– स्वाधीनता का नियम
- साध्य का अर्थ – मनुष्य को साध्य मानने का नियम
- राज्य का अर्थ– सार्वभौमिकता का नियम।

कांट के अनुसार मनुष्य के दो पक्ष होते है–

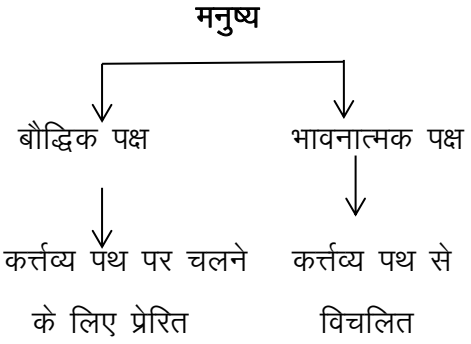

- नैतिकता के लिए व्यक्ति को अपने बौद्धिक पक्ष को सशक्त करना चाहिए तथा भावनात्मक पक्ष को नियंत्रित करना चाहिए।

नैतिकता की पूर्वमान्यताए – कांट के अनुसार नैतिकता की तीन पूर्व मान्यताएँ हैं।

I. **संकल्प स्वातत्र्य –**
   - संकल्प स्वातंत्र्य को नीतिशास्त्र की पूर्वमान्यता कहा जाता है इसका अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए उसे उसके निर्णयों हेतु उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

II. **आत्मा की अमरता –**
   - कांट के अनुसार आत्मा और ईश्वर को सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह अतीन्द्रिय विषय है। परन्तु नैतिकता की स्थापना के लिए आत्मा की अमरता व पुनर्जन्म के सिद्धांत को मान लिया जाना चाहिए।
   - क्योंकि एक जीवन सीमित होता है तथा इसमें पूर्ण नैतिकता को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए आत्मा के पुर्नजन्म को स्वीकार किया जाना चाहिए।

III. **ईश्वर का अस्तित्व –**
   - ईश्वर को प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता लेकिन नैतिकता की स्थापना के लिए ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।
   - नैतिक व्यक्ति को ईश्वर के द्वारा आनन्द प्रदान किया जाता है। जिससे शुभ संकल्प पूर्ण संकल्प बन जाते है।
   - पूर्ण संकल्प– आनन्द से युक्त शुभ संकल्पों को पूर्ण संकल्प कहा जाता है।
   - पवित्र संकल्प– ईश्वरीय संकल्पों को पवित्र संकल्प कहा जाता है।
   - ये संकल्प पूर्ण रूप से बौद्धिक होते है। इसमें भावनाओं का अंश मात्र भी नहीं होता है।

कांट की आलोचनाएं –

- कांट परिणामों की पूर्ण रूप से अवहेलना करता है कि, परन्तु व्यवहारिक जीवन में यह संभव नहीं है।
- कांट की नैतिकता अत्यंत कठोर है जिसे व्यवहारिक जीवन में अपनाना संभव नहीं है।
- कांट अपवादों को स्वीकार नहीं करता हे, लेकिन प्रत्येक सिद्धांत में अपवाद होता है।
- कांट भावनाओं को कोई महत्व नहीं देता है जबकि मुनष्य के अस्तित्व के लिए भावनाएं और संवेदनाएं महत्वपूर्ण है।
- कांट ईश्वर और आत्मा को स्वीकार करता है, परन्तु इन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता है।
- नैतिकता ईश्वर व आत्मा पर निर्भर नहीं करती है।

कांट के कथन –

1. मासूमियत शानदार होती है, लेकिन बुरा ये है, बदले में यह स्वयं को अच्छी तरह से नहीं बचा सकती है और इसे आसानी से बहकाया जा सकता है।

2. सबसे बड़ा मानवीय खोज यह जानना कि मनुष्य बनने के लिए उसको क्या करना चाहिए।
3. आदमी को अनुशासित होना चाहिए, क्योंकि वह स्वभाव से कच्चा और जंगली होता है।
4. यह संदेह से परे है कि हमारे सभी ज्ञान अनुभव के साथ शुरू होता है।
5. परिपक्वता का अर्थ है अपनी स्वयं की बुद्धि का उपयोग करने का साहस।

अन्तः प्रज्ञावाद

इसके अनुसार वे कार्य नैतिक है जो अन्तः प्रज्ञा के अनुसार है।

- अन्तःप्रज्ञा एक प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान है जिसके स्रोत की व्याख्या व्यक्ति नहीं कर पाता है।

मुख्य अन्तप्रज्ञावादी विचारक–

1. रेल्फ कडवर्थ –

- कडवर्थ के अनुसार अन्तःप्रज्ञा में अनुभव की कोई भूमिका नहीं होती हे। इसका निर्माण बुद्धि से होता है। सभी लोगों में अन्तःप्रज्ञा विद्यमान है जिससे वे नैतिक निर्णय ले सकते है।
- अन्तःप्रज्ञा गणित के नियमों के जैसी है।

2. शेफ्टी सबरी और हचिसन –

- इसके द्वारा 'नैतिक सविति' का सिद्धांत दिया गया।
- इन्होंने अनुभव और भावनाओं की भूमिका को भी स्वीकार किया है। जिस प्रकार व्यक्ति को सौन्दर्य का ज्ञान होता है उसी प्रकार नैतिक संविति का भी विकास होता है। अर्थात् जो व्यक्ति बार–बार नैतिक समस्याओं और दुविधाओं का सामना करता है वह बेहतर नैतिक निर्णय ले सकता है।

3. बटलर –

- इसके द्वारा अन्तर्विवेक का सिद्धांत दिया गया है।
- इसने भावनाओं और बुद्धि दोनों की भूमिका स्वीकार की है।

इसके अनुसार अन्तर्विवेक के दो पक्ष होते है–

संज्ञानात्मक पक्ष –

- इससे व्यक्ति सही और गलत की जानकारी प्राप्त करता है।

अधिकारात्मक पक्ष

- यह व्यक्ति को सही कार्य करने तथा गलत कार्य न करने के लिए बाध्य करता है।
- यदि अन्तरात्मा को लगातार नजरअंदाज किया जाता है, तब अधिकारात्मक पक्ष कमजोर हो जाता है तथा व्यक्ति जानते हुए भी अनैतिक कार्य करता है।

जॉन रॉल्स–

- यह एक अमेरिकी विचारक है।
- 1971 में इसने एक पुस्तक लिखी 'Theory of Justice'.
- इसके अनुसार न्याय का अर्थ है 'निष्पक्षता'।
- इसके समक्ष मुख्य समस्या है कि प्राथमिक वस्तुओं जैसे– स्वतंत्रता,समानता, अवसर आदि का समान वितरण किस प्रकार किया जाये।
- इसने पहले से मौजूद न्याय के सिद्धांतों की आलोचना की है क्योंकि वह पक्षपातपूर्ण है तथा उन सिद्धांतों के निर्माण के लिए सही प्रक्रिया का प्रयोग नहीं किया गया। जैसे उपयोगितावाद।
- रॉल्स ने उपयोगितावाद की आलोचना की है, क्योंकि इसमें अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा नहीं की जाती तथा इस सिद्धांत के निर्माण में सभी की सहमति नहीं ली गयी।
- न्याय के सिद्धांत के निर्माण के लिए एक ऐसी प्रक्रिया का प्रयोग किया जाना चाहिए जिसमें सभी की सहमति का प्रयोग हो।

- न्याय का सिद्धांत बनाने के लिए सामाजिक समझौते के सिद्धांत की मदद ली जा सकती है। यह सिद्धांत हॉब्स, लॉक व रूसों द्वारा राज्य की व्याख्या करने के लिए दिया गया था।
- इसमें कल्पना की गई है जिसमें सभी को शामिल किया गया है।
- न्याय का सिद्धांत बनाने के लिए ऐसी ही कल्पना की जा सकती है। सभी बौद्धिक लोगों को एक जगह बुलाया जाना चाहिए इस स्थिति को वास्तविक स्थिति कहा गया है। इन बौद्धिक लोगों को एक अज्ञानता के पर्दे में रखा जाना चाहिए। अर्थात उन्हें कुछ बातों का ज्ञान नहीं होना चाहिए।

  जैसे– 1. अपनी सामाजिक स्थिति का ज्ञान

  2. स्वयं की क्षमताओं का ज्ञान

  3. भविष्य की योजनाओं का ज्ञान

- ऐसी परिस्थिति में लोग निम्नलिखित न्याय के सिद्धांत पर सहमत हुए–
  1. सभी को समान स्वतंत्रता
  2. सभी को समान अवसर तथा कमजोर वर्ग को संरक्षण
- रॉल्स ने समाज की तुलना एक चेन से की है।
- यदि चेन को अस्तित्व में बनाए रखना है तब इसकी सबसे कमजोर कड़ी को संरक्षण दिया जाना चाहिए।

Springboard ACADEMY

भारतीय विचारक

महात्मा गांधी

- महात्मा गांधी एक 'नव्य वेदांती' विचारक है।
- वेदान्त के दर्शन के अनुसार '' ब्रह्म सत्य है तथा जगत मिथ्या'' है। परन्तु नव्य वेदांत के अनुसार ब्रह्म भी सत्य है तथा जगत भी सत्य है। इसलिए जगत की समस्याएं भी सत्य है। इन समस्याओं का समाधान किया जाना चाहिए।

अन्य नव्य वेदांती विचारक है–

1. स्वामी विवेकानन्द
2. रवीन्द्र नाथ टैगोर
3. डॉ .राधाकृष्णन
4. महर्षि अरविन्द
5. राजा राममोहन राय

- महात्मा गांधी के विचारों पर भारतीय दर्शन और पश्चिमी दर्शन दोनों का प्रभाव देखने को मिलता है।
- भारतीय दर्शन में गांधीजी उपनिषदों से अधिक प्रभावित थे। उपनिषदों से इन्होंने ''ईशावास्यम् इदम् सर्वम्'' का कथन दिया।
- भगवद्गीता से इन्होने 'सर्वधर्म और कर्मयोग ' की शिक्षा दी।
- भगवद्गीता पर टीका लिखी– ''अनासक्ति योग'' ।
- इनके विचारों पर पतंजलि के योगदर्शन का प्रभाव भी दिखाई देता है।
- जैन दर्शन से पंच महाव्रत की शिक्षा ली तथा यह बौद्ध दर्शन से भी प्रभावित थे।
- पश्चिमी दर्शन में इन्होंने ईसा मसीह से दया और करूणा की शिक्षा ली।
- इनके अराजकतावादी विचारों पर टॉल्सटॉय और हेनरी डेविड थोरो का प्रभाव है।
- हिन्द स्वराज और सर्वोदय के विचार जॉन रस्किन की पुस्तक 'Unto This Last' से लिए गए।
- पचं महाव्रत (महात्मा गांधी के अनुसार)

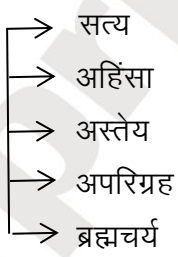

1. सत्य –

- सत्य का सामान्य अर्थ है किसी तथ्य को जैसा देखा, सुना और समझा गया है। बिना किसी संशोधन के वैसा ही अभिव्यक्त कर देना सत्य कहलाता है।
- महात्मा गांधी ने इस अर्थ को स्वीकार किया है,परन्तु इन्होंने सत्य का एक व्यापक अर्थ भी स्वीकार किया है जिसके अनुसार सत्य ईश्वर है।
- यह कथन ईश्वर सत्य है कथन से अधिक व्यापक है, क्योंकि नास्तिक व्यक्ति भी इसमें विश्वास कर सकता है तथा इससे धार्मिक मतभेदों को दूर किया जा सकता है।

- इनके अनुसार जीवन का परम उद्देश्य सत्य की प्राप्ति करना है। इसके लिए इन्होंने अपनी जीवनी का शीर्षक ''सत्य के साथ मेरे प्रयोग'' रखा है।

सत्य के मार्ग पर चलने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. अनावश्यक अभिव्यक्ति से बचना चाहिए।
2. कष्ट और निंदा सहन करने की क्षमता होनी चाहिए क्योंकि सत्य के मार्ग पर चलने के यह स्वाभाविक परिणाम है।
3. अनावश्यक दार्शनिक उलझनों से बचना चाहिए तथा सामान्य सूझ बूझ से जीवन जीना चाहिए।
4. सत्याग्रह का प्रयोग किया जाना चाहिए।
5. यह दो शब्दों से मिलकर बना है– सत्य + आग्रह।
   - सत्य की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयास सत्याग्रह कहलाते है।
   - सत्यागह करने वाले व्यक्ति को स्वयं कष्ट सहन करना पड़ता है तथा विरोधी पक्ष के ह्रदय को परिवर्तित करने का प्रयास करता है।
   - सत्याग्रह का प्रयोग स्वतंत्रता आंदोलन में भी किया गया ।

   सत्याग्रह करने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. अहिंसा	2. ईश्वर में विश्वास	3. सहनशीलता
4. धैर्य	5. दया	6. करूणा
7. ईमानदारी	8. विरोधी पक्ष के प्रति घृणा का अभाव	9. साहस

2. अंहिसा –

- नकारात्मक अर्थों में मन, कर्म, वचन से कष्ट ना पहुँचाना अंहिसा कहलाता है।
- गांधीजी ने इस अर्थ को स्वीकार किया है परन्तु साथ ही एक सकारात्मक व्याख्या भी की गई।
- सकारात्मक अर्थों में दूसरों के प्रति दया, करूणा और स्नेह का भाव रखना तथा दूसरों की सेवा करना अंहिसा कहलाता है।
- इसके अनुसार जगत का प्रत्येक तत्व ईश्वर का ही रूप है। इसलिए सभी जीवों के बीच स्वस्थ संबंध होने चाहिए। इसके लिए अंहिसा आवश्यक है।
- अंहिसा कोई आदर्श नहीं है। यह मनुष्य की मूल प्रवृति है जिस प्रकार पशु की मूल प्रवृति हिंसा है उसी प्रकार मनुष्य की मूल प्रवृति अहिंसा है।
- यदि किसी भी समस्या का समाधान हिंसा से निकला जाता है तो वह समाधान एक पक्षीय व अस्थायी होगा। परन्तु यदि समाधान अहिंसा से निकाला जाता है तब वह समाधान सर्वपक्षीय और स्थायी होगा।
- कायरता और अहिंसा समानार्थक नहीं है। अहिंसा एक उत्कृष्ट मूल्य है जो कि आध्यात्मिकता और नैतिकता पर आधारित जबकि कायरता एक निकृष्ट मूल्य है जो विवशता और दुर्बलता पर आधारित है।
- यदि हिंसा और कायरता में से किसी एक को चुनना हो तब हिंसा को चुना जाना चाहिए। क्योंकि हिंसक व्यक्ति को अहिंसक बनाया जा सकता है किन्तु कायर व्यक्ति को अहिंसक नही बनाया जा सकता है।
- अहिंसा के लिए ईश्वर में विश्वास आवश्यक है। महात्मा गांधी के अनुसार सत्य साध्य तथा अहिंसा साधन है।

3. अस्तेय – चोरी ना करना

- अस्तेय का सामान्य अर्थ– चोरी ना करना।
- महात्मा गांधी के अनुसार चोरी तीन प्रकार की होती है–
  i. भौतिक चोरीः– किसी अन्य की वस्तु पर बिना उसकी सहमति के अधिकार कर लेना।
  ii. मानसिक चोरीः– चोरी का विचार मन में लाना।
  iii. वैचारिक चोरी–किसी अन्य के विचारों को स्वयं का बताकर प्रसारित करना।

- यदि व्यक्ति सत्य और अहिंसा का पालन करता है तब अस्तेय का पालन स्वतः ही हो जाता है। क्योंकि अहिंसक व्यक्ति मानसिक और भौतिक चोरी नहीं करेगा तथा सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति वैचारिक चोरी नहीं करेगा।

4. अपरिग्रह –

- इसका सामान्य अर्थ– संग्रहित न करना।
- महात्मा गांधी ने इसकी व्यापक व्याख्या की है। जिसके अनुसार बिना श्रम किए हुए कुछ भी स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए तथा बुनियादी आवश्ययकताओं की पूर्ति के बाद जो कुछ भी बचता है उसका प्रयोग समाज के उत्थान के लिए किया जाना चाहिए।

न्यासधारिता का सिद्धांत –

- यह गांधीजी का आर्थिक दर्शन है।
- इसका प्रयोग आर्थिक असमानता की समस्या को दूर करने के लिए किया गया है।
- इसके अनुसार पूंजीपति वर्ग को यह समझाया जाना चाहिए की वे सम्पति के मालिक नहीं है। वे सिर्फ उसके ट्रस्टी/ संरक्षी है।
- अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो कुछ भी बचता है उसका प्रयोग सामाजिक कल्याण के लिए किया जाना चाहिए।
- यह सिद्धांत पूँजी और श्रम दोनों को महत्वपूर्ण मानता है। यह वर्ग संघर्ष की बजाय वर्ग सहयोग पर बल देता है।
- यह आर्थिक असमानता की समस्या का हल अहिंसा और सामाजिक सौहार्द्ध से करता है।
- विनोबा भावे का भू–दान आन्दोलन इसी सिद्धांत पर आधारित है।
- वर्तमान की निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) अवधारणा भी इसी सिद्धांत पर आधारित है।

5. बह्मचर्य –

- इसका सामान्य अर्थ है इंन्द्रियों पर नियंत्रण करना महात्मा गांधी ने भी इसी अर्थ को स्वीकार किया है।
- यह मनुष्य का स्वाभाविक गुण नहीं है इसे प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयास करने चाहिए।

जैसे– i. मन में पवित्र भाव लाना

ii. ईश्वर की उपासना

iii. ध्यान

iv. दूसरों की सेवा करना

v. स्वाध्याय

vi. इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित करने का निरन्तर प्रयास।

अन्य विचार –

1. साधन और साध्य सम्बन्धी विचार –

- यहाँ मूल प्रश्न यह है कि क्या साधन का नैतिक मूल्य साध्य पर निर्भर करता है।
- कुछ विचारकों के अनुसार यदि साध्य पवित्र हो तो साधन स्वतः ही पवित्र हो जाता है। जैसे– मार्क्स के अनुसार समानता साध्य है तथा वह हिंसा को नैतिक मानता है।

- महात्मा गांधी इन विचारों का खण्डन करते है। इनके अनुसार साधन और साध्य दोनों पवित्र होने चाहिए। यदि साधन अपवित्र है तो साध्य भी अपवित्र हो जाएगा क्योंकि जैसा हम बोते है वैसा ही हम पाते है। इसलिए स्वतंत्रता आन्दोलन में अहिंसा को साधन के रूप में प्रयोग में लिया गया।
- प्रशासनिक अधिकारियों को सामाजिक ल्याण के लिए संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों का प्रयोग करना चाहिए।

2. हृदय परिवर्तन सम्बन्धी विचार –

- कुछ विचारकों का मानना है कि परिस्थितियों में परिवर्तन किए बिना समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। परन्तु गांधी जी के अनुसार परिस्थितियाँ विचारों पर निर्भर करती है। यदि विचारों में परिवर्तन कर दिया जाए तब परिस्थितियों में भी परिवर्तन सम्भव है।
- इसके अनुसार सभी जीवों में ईश्वरीय तत्व उपस्थित होता है यदि कोई व्यक्ति गलत कार्य कर रहा है तब इसका अर्थ है कि उसका ईश्वरीय तत्व जाग्रत अवस्था में नहीं है। यदि ईश्वरीय तत्व को जाग्रत कर दिया जाए तब वह व्यक्ति गलत कार्यों को छोड़ देगा।

3. प्रकृति संबंधी विचार –

- मानववादी विचारकों ने प्रकृति को मनुष्य के अधीन माना है तथा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रकृति का दोहन कर सकता है। परन्तु गांधी जी ने इन विचारों का खण्डन किया है। इनके अनुसार प्रकृति भी ईश्वर का अंश है। इसलिए मनुष्य व प्रकृति के बीच सहअस्तित्व का संबंध होना चाहिए। प्रकृति मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा मनुष्य प्रकृति की देखभाल करे।
- इनके अनुसार प्रकृति के पास इतने संसाधन तो है कि मनुष्य की आवश्कताओं की पूर्ति तो की जा सकती है परन्तु किसी भी व्यक्ति के लालच की पूर्ति नहीं की जा सकती है। इसलिए मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना चाहिए तथा लालच को नियंत्रित करना चाहिए।
- एक पश्चिमी विचारक आर्नेनैस ने अपनी पुस्तक Gandhi and Nuclear Age में लिखा– ''कि वर्तमान की पर्यावरणीय समस्याओं का हल गांधी जी के विचारों से निकाला जा सकता है।''

4. सामाजिक विचार –

i. सर्वोदय –

- यह विचार ''जॉन रस्किन'' की पुस्तक Unto the last से प्रभावित है।
- सर्वोदय का अर्थ – सभी का सभी प्रकार का उदय। अर्थात् सर्वोदय में सभी व्यक्तियों, भाषाओं, धर्मों, नस्लों, जाति आदि के उदय की संकल्पना है।
- यह भौतिक, नैतिक व आध्यात्मिक विकास की चर्चा करता है।
- यह एक आदर्श राज्य है तथा समाज का साध्य है, इस आदर्श राज्य को रामराज्य भी कहा गया है।
- प्रशासन के सभी कार्यों का उद्देश्य सर्वोदय की स्थापना है।
- यह प्रशासनिक अधिकारियों के लिए मार्ग दर्शन सिद्धांत है।
- जब भी कोई निर्णय लिया जाए तब अन्तिम पंक्ति में खड़े सबसे कमजोर व्यक्ति के हितों के बारे में सोचना चाहिए।
- यह सिद्धांत मूल रूप से सभी की समानता को स्वीकार करता है। यह अन्य विचारों से श्रेष्ठ है। जैसे– मार्क्सवाद सिर्फ मजदूर वर्ग के हितों की बात करता है।
- उपयोगितावाद सिर्फ बहुसंख्यकों के हितों की बात करता है। आधुनिक विचारक भी सिर्फ भौतिक विकास की चर्चा करते हैं। परंतु सर्वोदय सभी लोगों के सभी प्रकार के विकास की चर्चा करता है।

ii. अस्पृश्यता निवारण –

- यह समाज पर एक कलंक है।
- किसी भी परिस्थिति में अस्पृश्यता को सही नहीं ठहराया जा सकता। सभी जीवों में ईश्वरीय तत्व उपस्थिति है। इसलिए किसी के भी प्रति भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

- इन्होंने अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों के **हरिजन** शब्द का प्रयोग किया। हरिजन सेवा संघ की स्थापना की। हरिजन नामक समाचार पत्र प्रकाशित किया। इन्होंने इस दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के लिए पूरे भारत वर्ष का दौरा किया।

iii. वर्ण व्यवस्था –

- गांधीजी ने जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है। इसके अनुसार वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन की एक प्रणाली है जिसके माध्यम से समाज में विभिन्न प्रकार के कार्यों को बांटा गया है।
- इससे व्यक्ति परिवार से ही कौशल सीख लेता है तथा उसे आजीविका के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता है। इससे सामाजिक सहयोग बढ़ता है तथा व्यक्ति के पास इतना समय बचता है कि वह अपने आध्यात्मिक विकास का चिंतन कर सके।
- परन्तु इन्होंने जाति आधारित भेदभाव का समर्थन नहीं किया। इसके अनुसार जातिय भेदभाव कृत्रिम है, क्योंकि यह विचार पर आधारित है कि एक प्रकार का श्रम श्रेष्ठ है और दूसरा निकृष्ट।
- जबकि सभी प्रकार के श्रम एक समान होते है, इन्होंने मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम को भी एक समान माना है। इनके अनुसार एक नाई और एक वकील का वेतन एक समान होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना चाहिए जिससे कि शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान का भाव हो।

iv. महिला सशक्तिकरण –

- गांधी जी महिलाओं की समानता व सशक्तिकरण के समर्थक थे इन्होंने महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा गया तथा उनकी राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित की।

5. धर्म संबंधी विचार –

- इन्होंने 'सर्वधर्म सम्भाव' के विचार का समर्थन किया, अर्थात् सभी धर्म एक समान है,
- सभी धर्म ईश्वर तक पहुंचने के अलग–अलग मार्ग है । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करना चाहिए।
- परन्तु यह धर्म परिवर्तन का समर्थन नहीं करते क्योंकि धर्म परिवर्तन धार्मिक श्रेष्ठता के विचार पर आधारित है। गांधीजी ने धार्मिक अंधविश्वासों तथा धार्मिक आडम्बरों का भी विरोध किया।

धर्म और राजनीति–

- कुछ पश्चिमी विचारकों ने धर्म और राजनीति को अलग–अलग करने का समर्थन किया। जैसे – मैकियावेली
- मार्क्स ने तो निजी जीवन में भी धर्म की आलोचना की है, परन्तु गांधीजी के अनुसार धर्म और राजनीति को अलग–अलग नहीं किया जा सकता।
- यहाँ धर्म का अर्थ उस सिद्धांत से है जिसके कारण सब कुछ अस्तित्व में है। धर्म, पंथ या सम्प्रदाय नहीं है अर्थात् धर्म का वास्तविक अर्थ है– 'कर्त्तव्य का पालन'।
- यदि राजनीति धर्म विहीन हुई तो वह कर्त्तव्य विहीन भी हो जाएगी, ऐसी राजनीति किसी का भी कल्याण नहीं कर सकती है। इसलिए धर्म व राजनीति को अलग–अलग नहीं किया जा सकता है।

6. आर्थिक विचार –

- महात्मा गांधी एक आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समर्थन करते है। जिसमें सभी प्रकार की मांग और आपूर्ति गांव में ही पूरी की जाए।

7. राजनीतिक विचार –

- राजनीतिक दृष्टिकोण से महात्मा गांधी अराजकतावादी विचारक है।
- उन्होंने राज्य की आलोचना की है तथा राज्य को एक अनैतिक संस्था माना है। क्योंकि राज्य हिंसा पर आधारित है। वह अपने नियमों और कानूनों को लागू करने के लिए दण्ड का प्रयोग करता है।

- राज्य के कारण व्यक्ति आत्मनिर्भरता को खोता जा रहा है तथा वह सभी कार्यों के लिए राज्य पर निर्भर होता जा रहा है। इसलिए राज्य नामक संस्था समाप्त होनी चाहिए। परन्तु यह मार्क्स की तरह हिंसक अराजकतावादी नहीं है। यह टॉल्सराय की तरह प्रबुद्ध अराजकतावादी है।
- जब सभी व्यक्तियों में ईश्वरीय तत्व जागृत हो जाएगा तब राज्य की आवश्यकता नहीं होगी। ऐसी स्थिति को इन्होंने 'रामराज्य' कहा है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के ईश्वरीय तत्व का उसी व्यक्ति के पशुतत्व पर शासन।
- रामराज्य एक आदर्श अवस्था है जिसको प्राप्त करने में अत्यधिक समय लगेगा। जब तक रामराज्य को प्राप्त नहीं कर लिया जाता है तब तक न्यूनतम राज्य की अवधारणा को अपनाया जाना चाहिए। जिसमें राज्य की शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व सीमित हो।
- इन्होंने पंचायती राज व्यवसथा का समर्थन किया। इस व्यवस्था का केन्द्र गाँव है। गाँव के स्तर पर केन्द्र ग्राम पंचायत है, जिसका चुनाव प्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए तथा इसे कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका की शक्ति होनी चाहिए। इसके उपर तालुल्का पंचायत, जिला पंचायत, राज्य पंचायत एवं देश की पंचायत होनी चाहिए। जिसका चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए।
- इनके अनुसार गाँवों के लोगों को विचारधाराओं के आधार पर बाँटा नहीं जाना चाहिए इसलिए दल विहीन राजनीति को अपनाना चाहिए।

गांधीजी के सात पाप –

1. कार्य के बिना धन
2. नैतिकता के बिना वाणिज्य
3. अन्तरआत्मा के बिना सुख
4. चरित्र के बिना ज्ञान
5. मानवता के बिना विज्ञान
6. त्याग के बिना पूजा
7. सिद्धांत के बिना राजनीति

गांधीजी के 11 व्रत –

1. सत्य	2. अहिंसा	3. अस्तेय	4. अपरिग्रह
5. ब्रह्मचर्य	6. शारीरिक श्रम	7. अस्पृश्यता निवारण	8. सर्वधर्म समभाव
9. अभय	10. अस्वाद	11. स्वदेशी	

- स्वदेशी का सामान्य अर्थ 'स्वयं के देश का'।
- महात्मा गांधी का स्वेदशी का विचार विदेशी के विरोध पर आधारित नहीं है। इसके अनुसार स्वदेशी व विदेशी दोनों प्रकार की वस्तुओं का सहअस्तित्व होना चाहिए। परन्तु यदि विदेशी वस्तु स्वदेशी वस्तु के अस्तित्व पर खतरा है तब ऐसी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाना चाहिए प्रत्येक देश की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि अपने नागरिकों को आजीविका के साधन उपलब्ध करवाए।

गांधीजी के कथन –

1. खुद वो बदलाव बनिए जो आप दुनिया में देखना चाहते है।
2. आपको मानवता में विश्वास नहीं खोना चाहिए।
3. काम की अधिकता नहीं अनियमितता आदमी को मार डालती है।

4. भूल करने में पाप तो है ही परन्तु उसे छुपाने में उससे बड़ा पाप है।
5. श्रद्धा का अर्थ है आत्मविश्वास और आत्मविश्वास का अर्थ है ईश्वर में विश्वास।
6. अक्लमंद काम करने से पहले सोचता है और मूर्ख काम करने के बाद।
7. कमजोर कभी माफी नहीं मांगते, क्षमा करना तो ताकतवर व्यक्ति की विशेषता है।
8. क्रोध और सहिष्णुता सही समझ के दुश्मन है।
9. जो समय बचाते है वे धन बचाते है और बचाया हुआ धन कमाये हुए धन के बराबर है।
10. मौन सबसे सशक्त भाषण है, धीरे–धीरे दुनिया आपको सुनेगी।
11. मेरा धर्म सत्य है और अंहिसा पर आधारित है, सत्य मेरा भगवान है, अंहिसा उसे पाने का साधन है।
12. पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है लेकिन लालच पूरी करने के लिए नहीं।
13. अपने प्रयोजन में विश्वास रखने वाला एक सूक्ष्म शरीर इतिहास के रूख को बदल सकता है।
14. आप मानवता में विश्वास मत खोइए मानवता सागर की तरह है अगर सागर की कुछ बूंदें गंदी है तो सागर गंदा नहीं हो जाता।
15. कुरीति के अधीन होना कायरता है, इसका विरोध करना पुरूषार्थ है।
16. व्यक्ति की पहचान उसके कपड़ों से नहीं अपितु उसके चरित्र से आंकी जाती है।
17. अपनी गलती को स्वीकारना झाड़ू लगाने के समान है जो धरातल की सतह को चमकदार और साफ कर देती है।
18. मेरा जीवन मेरा संदेश है।
19. किसी देश की संस्कृति लोगों के दिलों में और आत्मा में निवास करती है।
20. व्यक्ति अपने विचारों से निर्मित एक प्राणी है वह जो सोचता है, वही बन जाता है।
21. कर्म प्राथमिकताओं को व्यक्त करता है।
22. स्वयं को जानने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है स्वयं को दूसरों की सेवा में डूबो देना।
23. ऐसे जीयों जैसे कि तुम कल मरने वाले हो, ऐसे सीखों की तुम हमेशा के लिए जीने वाले हो।
24. एक राष्ट्र की संस्कृति उसमें रहने वाले लोगों के दिलों में और आत्मा में रहती है।
25. सत्य बिना जन समर्थन के भी खड़ा है, वह आत्मनिर्भर है।
26. मैं सभी की समानता में विश्वास रखता हूं, सिवाय पत्रकारों और फोटोग्राफरों के।
27. विश्वास करना एक गुण है, आत्मविश्वास दुर्बलता की जननी है।
28. मैं मरने के लिए तैयार हूं पर ऐसी कोई वजह नहीं है, जिसके लिए में मारने को तैयार हो जाऊं।
29. पाप से घृणा करो, पापी से प्रेम करो।
30. भगवान का कोई धर्म नहीं है।
31. आंख के बदले आंख पूरे विश्व को अंधा बना देगी।
32. सत्य कभी ऐसे कार्यों को क्षति नहीं पहुंचाता जो उचित हो।
33. लम्बें–लम्बें भाषणों से कहीं अधिक मूल्यवान है इंच भर कदम बढ़ाना।
34. अपनी बुराई हमेशा सुनो और अपनी तारीफ कभी न सुने।

रविन्द्रनाथ टैगोर –

- ये नव्य वेदांती विचारक है।
- इन पर ब्रह्म समाज का प्रभाव था।
- इन्होंने वेदांत की शिक्षाओं की व्याख्या नए प्रकार से की।

- इनके दार्शनिक विचारों पर अलग से कोई पुस्तक नहीं लिखी गयी है।
- इनकी कहानियों, उपन्यास और कविताओं से इनके दार्शनिक विचारों की जानकारी मिलती है।

प्रमुख विचार–

1. आध्यात्मिक मानववाद –

- सभी जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ है। मुनष्य की आध्यात्मिक शक्ति उसे श्रेष्ठ बनाती है।
- इन्होंने पश्चिमी मानववाद का विरोध किया क्योंकि वह सिर्फ बुद्धि पर आधारित है।

इनके अनुसार मनुष्य के दो पक्ष होते है।

I. ससीम पक्ष

- यह मनुष्य के जैविक अस्तित्व से संबंधित है।

II. असीम पक्ष

- यह आध्यात्मिकता व रचनात्मकता पर आधारित है।
- मुनष्य में ही यह क्षमता है कि वह ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।
- इन्होंने ईश्वर पर भी मनुष्य के गुण आरोपित किए है। इनके अनुसार ईश्वर में संवेदनाएं होती है। अन्य मनुष्यों की सेवा करके ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

2. शिक्षा संबंधी विचार –

- इन्होनें औपचारिक शिक्षा का विरोध किया। क्योंकि औपचारिक शिक्षा सभी को एक समान रूप से दी जाती है इसमें व्यक्ति की रूचि को महत्व नही दिया जाता है।
- यह शिक्षा पद्धति व्यक्ति को प्रकृति से दूर कर देती है इसलिए शिक्षा व्यवस्था में व्यापक सुधार किए जाने चाहिए।
- शिक्षा प्राथमिक रूप से मातृ भाषा में दी जानी चाहिए।
- व्यक्ति व प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित होना चाहिए। इनके द्वारा शांति निकेतन की स्थापना की गई।

3. रहस्यवाद –

- इन्होंने मनुष्य के चरित्र, प्रकृति और समाज की रहस्यमय व्याख्या की।
- प्रत्येक मनुष्य के चरित्र के विभिन्न आयाम होते है।
- मनुष्य अलग–अलग परिस्थितियों में अलग–अलग व्यवहार करता है। इनके अनुसार कोई भी मनुष्य पूर्णत अच्छा पूर्णतः बुरा नहीं होता है।
- प्राकृतिक घटनाए भी अलग–अलग लोगों पर अलग अलग प्रभाव डालती है।
- इन्होंने प्राकृतिक घटनाओं को ईश्वरीय अभिव्यक्ति बताया है।
- समाज में भी अच्छाई और बुराई विद्यमान है इसी वास्तविकता के साथ हमें समाज को स्वीकार करना चाहिए।

4. अन्तर्राष्ट्रीय वाद –

- इनके अनुसार मनुष्य को राष्ट्र की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में अन्तर्राष्ट्रीय वाद को अपनाया जाना चाहिए।
- वसुधैव कुटुम्बकम की नीति को अपनाया जाना चाहिए।

5. समता मूलक समाज –

- इनके अनुसार सभी मनुष्य एक समान है, इसलिए ऐसे समाज का निर्माण किया जाना चाहिए, जो कि धर्म, जाति, लिंग, क्षेत्र, भाषा, नस्ल, रंग आधारित भेदभाव से मुक्त हो।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के कथन –

1. जब तक मैं जिन्दा हूं मानवता के ऊपर देशभक्ति की जीत नहीं होने दूंगा।
2. हमारे अन्तर में यदि प्रेम न जाग्रत हो, तो विश्व हमारे लिए कारागार ही है।
3. जो मन की पीड़ा को स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते उन्ही को क्रोध आता है।
4. उपदेश देना सरल है, पर समाधान बताना कठिन है।
5. जो कुछ हमारा है, वो हम तक आता है, यदि उसे ग्रहण करने की क्षमता रखते है।
6. यदि आप सभी गलतियों के लिए दरवाजे बंद कर देगें तो सच बाहर रह जायेगा।

स्वामी विवेकानन्द –

- ये नव्य वेदांती विचारक है। क्योंकि इन्होंने ब्रह्म के साथ–साथ जगत की सत्ता को भी स्वीकार किया है।
- ब्रह्म जगत का परम तत्व है जो कि पूर्ण रूप से आध्यात्मिक है परन्तु इन्होंने भौतिकतावादी को नकारा नहीं है।
- भौतिक विकास से ही आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।
- इनके विचारों पर ब्रह्म समाज, उपनिषद, भगवद्गीता रामकृष्ण परमहंस के विचारों का प्रभाव रहा।
- इन्होंने भारत के आत्मविश्वास को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।
- शिकागो के धर्म सम्मेलन में भाग लिया तथा सनातन धर्म के उच्च आदर्शों की व्याख्या की।
- इनके अनुसार सनातन धर्म एक सार्वभौमिक धर्म है, जो कि अन्य सभी धर्मों और पंथों को समावेशित करता है।
- इनके अनुसार प्रत्येक समाज में उसकी आवश्यकताओं के अनुसार मूल्यों का निर्माण होता है।
  जैसे– पश्चिमी समाज में भौतिकवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मूल्य विकसित हुए तथा भारतीय समाज में आध्यात्मिकता का मूल्य विकसित हुआ।
- दोनों समाजों को एक दूसरे के मूल्य सीखने चाहिए।
- इन्होंने सामर्थ्यपूर्ण जीवन पर अत्यधिक बल दिया।
- इनका प्रसिद्ध कथन है '' सामर्थ्य जीवन है और दुर्बलता मृत्यु।''
- इसलिए हमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शारीरिक आदि प्रकार से सशक्त होना चाहिए।
- आर्थिक रूप से सशक्त बनने के लिए गरीबी को समाप्त किया जाना चाहिए।
- राजनीतिक रूप से राजनीतिक गुलामी को दूर किया जाना चाहिए।
- समाज में फैले भेदभाव व कुरूतियों को दूर किया जाना चाहिए।
- धार्मिक अंधविश्वासों और आडम्बरों को दूर किया जाना चाहिए।
- इनके अनुसार जनसेवा ही वास्तविक धर्म है।
- हमें शारीरिक रूप से भी सशक्त बनना चाहिए, क्योंकि आध्यात्मिक संदेश को कमजोर व्यक्ति नहीं समझ सकता है।
- इन्होंने राष्ट्र निर्माण में युवाओं की भूमिका को सबसे महत्वपूर्ण माना है।
- इन्होंने युवाओं को आत्मनियंत्रण, आत्म जागरूकता, आत्म नियमन, आत्म कल्याण आदि की शिक्षाए दी।

स्वामी विवेकानन्द के कथन –

1. ज्ञान का प्रकाश सभी अंधेरों को खत्म कर देता है।
2. वह आदमी अमरत्व तक पहुंच गया है। जो किसी भी चीज से विचलित नहीं होता।
3. उठो, जागो और तब तक नहीं रूको जब तक लक्ष्य ना प्राप्त हो जाये।

4. सोच भले ही नयी रखो मगर संस्कार हमेशा पुराने होने चाहिए।
5. जितना कठिन संघर्ष होगा जीत उतनी ही शानदार होगी।
6. अगर आपके दिल और दिमाग के बीच संघर्ष रहा हो, तो हमेशा अपने दिल की सुने।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन –

- ये नव्य वेदांती विचारक है।
- इनके अनुसार भारतीय दर्शन शंकराचार्य के वेदांत दर्शन पर आधारित है।
- यह एक समन्वयवादी विचारक भी है जिन्होंने विरोधी विचार धाराओं में समन्वय स्थापित किया।

  जैसे –

  - आदर्शवाद और यथार्थवाद
  - धर्म और विज्ञान
  - परम्परा और आधुनिकता
  - भौतिकता और आध्यात्मिकता
  - पूर्व और पश्चिम
  - बुद्धि और अंतः प्रज्ञा
  - इनके अनुसार परमसत् जगत का मूल तत्व है यह पूर्ण रूप से चैतन्य है यह अनन्त है यह पूर्ण स्वतंत्र है, सामान्यतया किसी भी चीज को निम्नलिखित माध्यमों से जाना जाता है –
    - इन्द्रियों के माध्यम से
    - तर्क के माध्यम से
    - बुद्धि के माध्यम से
    - अंतःप्रज्ञा के माध्यम से

धर्म संबंधित विचार –

- इनके अनुसार धर्म के दो स्वरूप होते है–

  बाहरी स्वरूप –
  - इनका संबंध विभिन्न पूजा पद्धतियों, पुस्तको, रीति–रिवाजों, पूजा स्थलों आदि से है, प्रत्येक धर्म से यह बाहरी स्वरूप अलग–अलग है।

  आंतरिक स्वरूप –
  - इसका संबंध धर्म के मूल संदेश से है, यह संदेश सार्वभौमिक है तथा सभी धर्मो से एकरूपता / सहमति है।
  - सभी प्रकार के धार्मिक मतभेद इसलिए होते है क्योंकि धर्म के बाहरी स्वरूप पर अधिक बल दिया जाता है।
  - यदि इसके आंतरिक स्वरूप पर बल दिया जाए तब धार्मिक मतभेदों को दूर किया जा सकता है।

शिक्षा संबंधी विचार –

- शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास अर्थात् बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास। शिक्षा सिर्फ मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं है बल्कि आत्मा का प्रशिक्षण है।

कथन –

1. यदि मनुष्य मानव बन जाता है तो ये उसकी जीत है।
2. किताब पढ़ना हमें एकांत में विचार करने की आदत और सच्ची खुशी देता है।
3. सच्चे शिक्षक वे है जो हमें अपने लिए सोचने में सहायता करते है।
4. मौत कभी अंत या बाधा नहीं है बल्कि अधिक से अधिक नए कदमों की शुरूआत है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर –

- ये एक व्यवहारिक विचारक है।
- इन्हें भारतीय संविधान का पितामह भी कहा जाता है।
- इन्होंने संवैधानिक मूल्यों का समर्थन किया।
  जैसे–स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, गणतंत्र, सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्य, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विधि का शासन, धार्मिक सुधार, राष्ट्रीय एकता।
- इन्होंने सामाजिक असमानता, भेदभाव और अस्पृश्यता का विरोध किया और इनके अनुसार सभी समस्याओं का मूल जाति व्यवस्था है, और जाति व्यवस्था को समाप्त किया जाना चाहिए।
- इस मुद्दे पर इनका मतभेद महात्मा गांधी से है।
- ये सामाजिक भेदभाव की समस्या को संवैधानिक और कानूनी उपयों से हल करना चाहते थे।
- जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था के कारण इन्होंने हिन्दू धर्म की आलोचना की तथा उसमें कुछ सुधार सुझाए। जैसे– हिन्दू धर्म की एक प्रमाणिक पुस्तक होनी चाहिए।
- धार्मिक पदों पर नियुक्ति सरकार द्वारा प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से की जानी चाहिए।
- इन्होंने अंतरजातीय विवाह और अंतरजातीय भोजन को प्रोत्साहित किया।
- शुद्रों को इन्होंने सलाह दी कि उन्हें अपने पारम्परिक कार्य को छोड़कर नये कार्यों को अपनाना चाहिए।
- इसके लिए शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। इन्होंने कट्टरवाद और महिलाओं के मुद्दे पर इस्लाम की आलोचना की। इन्होने मानवाधिकारों का समर्थन किया।

मानवाधिकार की रक्षा के लिए तीन प्रकार के कार्य किए जाने चाहिए।

1. शिक्षित बनो
2. संगठित बनों
3. संघर्ष करो

इन्होंने आने वाली पीढी को 3 मुख्य सलाह दी–

1. हमें गांधीवादी विचारों जैसे– सविनय अवज्ञा, असहयोग, सत्याग्रह आदि को त्याग देना चाहिए, क्योंकि इससे कानून व्यवस्था कमजोर होती है तथा लोकतंत्र में आप सरकार बनाकर अपनी मांगों को पूरा कर सकते हो।
2. केवल राजनीतिक लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है सामाजिक लोकतंत्र भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
3. करिश्माई नेतृत्व के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव नहीं होना चाहिए।
   - इन्होने एक सशक्त केन्द्र सरकार का समर्थन किया। क्योंकि अलगाववादी विचारधारा को रोकने के लिए मजबूत केन्द्र आवश्यक है।
   - इन्होंने साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों का ही विरोध किया और इन्होंने आदर्शवादी की बजाय यर्थाथवाद पर अधिक बल दिया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के कथन –

1. बुद्धि का विकास मानव के अस्तित्व का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।
2. मंदिर जाने वाले लोगों की लम्बी कतारे, जिस दिन पुस्तकालय की ओर बढेगी उस दिन मेरे इस देश को महाशक्ति बनने से कोई नहीं रोक सकता है।
3. कानून और व्यवस्था, राजनीति के शरीर की दवाएं हैं और जब शरीर बीमार हो जाये तो दवाइयों को अपना कर काम करना चाहिए।

4. संविधान केवल वकीलों का दस्तावेज नहीं है बल्कि यह जीवन का एक माध्यम है।
5. मैं ऐसे धर्म को मानता हूं जो स्वतंत्रता,समानता और भाईचारा सिखाए।
6. हम सबसे पहले ओर अंत में भी भारतीय है।

महर्षि अरविंद –

- ये एक नव्य वेदांतीक विचारक है।
- इनके द्वारा एकात्म अद्वैतवाद की अवधारणा दी गयी।
- इनके अनुसार ब्रह्म आध्यात्मिक होते हुए भी भौतिकतावाद को समावेशित करता है।
- इनके अनुसार जगत का परम तत्व सच्चिदानंद है यह जगत में विभिन्न रूप से अभिव्यक्त होता है इन्होंने विकास के आठ स्तरों की चर्चा की है – जड़ तत्व–प्राण–मन–मानस–अतिमानस–आनन्द–चित–सत
- वर्तमान में विकास की प्रक्रिया मानस तक पहुंच चुकी है।
- इसकी अगली अवस्था अतिमानस की होगी जिससे व्यक्ति सच्चिदानन्द की अनुभूति करेगा इसी को मुक्ति कहा गया है।
- परन्तु इन्होंने व्यक्तिगत मुक्ति की बजाय सामूहिक मुक्ति पर बल दिया है।
- मानस से अतिमानस की अवस्था एकात्म योग के माध्यम से प्राप्त की जाएगी इसी से व्यक्ति की आत्मा का विकास होता है।

एकात्मक योग –

- सामुहिक मुक्ति के लिए एकात्म योग आवश्यक है, इसी से धरती पर दिव्य जीवन अवतरित होगा।
- योग का सामान्य अर्थ है– जोड़ना
- आत्मा– परमात्मा
- ससीम–असीम
- भक्त–भगवान
- इसमें योग की विभिन्न धारणाओं को समाहित कर दिया गया है जैसे–हठयोग, राजयोग, कर्मयोग।
- इसके माध्यम से भौतिक, मानसिक व जैविक रूपान्तरण होता है, रूपान्तरण की प्रक्रिया तीन स्तर में पूरी होती है–
  I. आत्मिकता की प्रक्रिया – इसके तहत व्यक्ति के आत्मिकता पक्ष का विकास होता है तथा नकारात्मक भाव समाप्त होते हैं। जैसे– अंहकार, क्रोध, लोभ, वासना।
  II. आध्यात्मिकता की प्रक्रिया – इसके तहत व्यक्ति के आध्यात्मिक पक्ष का विकास होता है तथा वह ज्ञान, शांति व स्थिरता को प्राप्त करता है।
  III. अतिमानसता की प्रक्रिया – यह योग की तीसरी एवं अंतिम कड़ी है, यह आत्मज्ञान की अवस्था है, इसमें सभी प्रकार के भेद समाप्त हो जाते है।

नैतिक सम्प्रत्यय

1. ऋत् (Rit)
2. ऋण (Rin)
3. कर्तव्य (Duty)
4. शुभ (Good)
5. सद्गुण (Virtue)

1. ऋत्

- यह एक नैतिक अवधारणा है।
- जगत की भौतिक, नैतिक और कर्मकांडिय व्यवस्था ऋत् से ही संचालित होती है।
- प्रारम्भ में इस अवधारणा का प्रयोग भौतिक व्यवस्था की व्याख्या करने के लिए किया गया लेकिन बाद में इसमें नैतिक और कर्मकांडिय व्यवस्था को भी जोड़ा गया।
- प्राकृतिक व्यवस्था ऋत् के कारण ही संभव हो पाती है।
  जैसे– दिन और रात का बनना, ऋतुओं का परिवर्तन होना, नक्षत्रों का परिवर्तन, प्यास लगने पर पानी की व्यवस्था, सांस लेने के लिए वायु की व्यवस्था, भूख लगने पर भोजन की व्यवस्था।
- समाज की नैतिक व्यवस्था भी ऋत् के कारण ही संभव हो पाती है। सभी लोग अपने कर्त्तव्यों का पालन करते है।
- धर्म की संकल्पना भी ऋत् पर आधारित है। कर्म का सिद्धांत भी ऋत् के अनुसार ही कार्य करता है।
- वेदों में यह प्रार्थना की गई है कि जीवन प्रकृति के अनुसार जिया जाना चाहिए। इसके लिए ''ऋतस्य यथा प्रेतः'' का प्रयोग किया गया है।
- कर्म सिद्धांत ऋत के अनुसार ही कार्य करता है।
- ऋत् का उल्लंघन करना संभव नहीं है।
- यदि कोई ऋत् का उल्लंघन करता है तो उसे दण्डित किया जाता है।
- 'वरूणदेव' को ऋत् का रक्षक बताया गया है।
- वरूण के लिए ''ऋतस्य गोपा'' शब्द का प्रयोग किया गया है।
- ऋत् की अवधारणा प्रशासन में भी प्रासंगिक है।
- प्रशासन संविधान,कानून, नियम और विनियमों से चलता है।
- जन कल्याण के लिए प्रशासनिक व्यवस्था आवश्यक है।
- प्रशासनिक व्यवस्था का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है यदि कोई ऐसा करने का प्रयास करता है तब उसे दण्डित किया जाता है।

2. ऋण–

- यह एक वैदिक अवधारणा है। जिसके अनुसार मनुष्य अपने भौतिक और सामाजिक जीवन के लिए माता–पिता,पूर्वजों, गुरूजनों और देवताओं का ऋणी है।

जन्म से ही व्यक्ति पर तीन प्रकार के ऋण होते है–

I. **पितृ ऋण–** यह ऋण माता–पिता और पूर्वजों के प्रति होता है। जिसके कारण व्यक्ति अस्तित्व में आता है। इस ऋण को चुकाने के लिए माता–पिता की सेवा, संतान उत्पति और पूर्वजों का श्राद्ध किया जाना चाहिए।

II. **ऋषि ऋण–** यह ऋण गुरूजनों के प्रति होता है। जिनसे व्यक्ति ने जीवन जीने की शिक्षा ली है।
इस ऋण को चुकाने के लिए गुरूजनों का सम्मान किया जाना चाहिए। वेदों, उपनिषदों और गीता का अध्ययन एवं अध्यापन किया जाना चाहिए।

III. **देव ऋण–** यह ऋण देवताओं के प्रति होता है जिनके कारण प्राकृतिक व्यवस्था संचालित होती है इसको चुकाने के लिए यज्ञ का आयोजन, मंत्रोचारण, प्रार्थना आदि की जानी चाहिए।

- मोक्ष की प्राप्ति के लिए ऋणों को चुकाना आवश्यक है, यदि व्यक्ति ऋध्स नहीं चुकाता है तो उसे तीन प्रकार के दुख भोगने पड़ते हैं।
  i. आध्यात्मिक दुखः– यह दुःख स्वयं के शरीर के कारण उत्पन्न होता है जैसे– बीमारी।
  ii. अधिभौतिक दुखः– यह दुख दूसरें जीवों के कारण उत्पन्न होता है जैसे– सांप काटना।
  iii. अधिदैनिक दुख– यह दुख देवताओं के कारण उत्पन्न होता है।
  उदाहरण – बाढ़ , सूखा।
- ऋण की अवधारणा प्रशासन में भी प्रासंगिक है। प्रशासनिक अधिकारियों को स्वयं को समाज के प्रति ऋणी समझना चाहिए तथा अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन निःस्वार्थ भाव से करना चाहिए।

3. **कर्त्तव्य–** संकीर्ण अर्थों में कर्त्तव्य का संबंध कानूनी उत्तरदायित्वों से है। परन्तु वृहद अर्थों में वह सभी कार्य कर्त्तव्य है जो की नैतिक रूप से किए जाने चाहिए। चाहे वे इच्छित हो या नहीं। चाहे वे कानूनी रूप से बाध्यकारी हो या नहीं ।
   - परिणाम निरपेक्षवादी नीतिशास्त्रियों ने कर्त्तव्य पालन पर सर्वाधिक बल दिया।
   - जैसे– इमेन्यूल कांट के अनुसार कर्त्तव्य–चेतना से किए गए कार्य ही नैतिक है।
   - भारतीय परम्परा में चार पुरूषार्थों की प्राप्ति कर्त्तव्य है।
   - सिविल सेवकों के लिए जन सेवा कर्त्तव्य है।

कर्त्तव्यों का वर्गीकरण –

i. सकारात्मक कर्त्तव्य – वे कार्य जो कि किये जाने चाहिए।
ii. नकारात्मक कर्त्तव्य – वे कार्य जो की नहीं किये जाने चाहिए।
iii. पूर्ण कर्त्तव्य – वे कर्त्तव्य जिसमें कोई अपवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता तथा कर्त्तव्यों के अनुपात में अधिकार भी दिए जाते है।
iv. अपूर्ण कर्त्तव्य – वे कर्त्तव्य जिसमे अपवाद स्वीकार किये जा सकते है कर्त्तव्यों के अनुपात में अधिकार नहीं दिए जाते है।
v. आत्मनिष्ठ कर्त्तव्य – वे कर्त्तव्य जिनकी व्याख्या व्यक्ति स्वयं करता है।
vi. वस्तुनिष्ठ कर्त्तव्य – वे कर्त्तव्य जो सभी के लिए एक समान होते है, व्यक्ति की व्याख्या पर निर्भर नहीं करते है।
vii. कानूनी कर्त्तव्य – ये कानूनी रूप से बाध्यकारी होती है। अर्थात् कर्त्तव्य का उल्लंघन करने पर दण्ड दिया जाता है।
viii. नैतिक कर्त्तव्य – वे कर्त्तव्य जो कि नैतिक रूप से बाध्यकारी है। कर्त्तव्यों का उल्लंघन करने पर सामाजिक आलोचना होती है।

व्यक्ति के कर्त्तव्य

स्वयं के प्रति – शारीरिक कर्तव्य, बौद्विक कर्तव्य, आर्थिक कर्तव्य, नैतिक कर्तव्य
दूसरों के प्रति – परिवार के प्रति, मित्रगणों के प्रति, समाज के प्रति, देश के प्रति, मानवता के प्रति
ईश्वर के प्रति – धार्मिक कर्तव्य, आध्यात्मिक कर्तव्य

कर्त्तव्यों में टकराव –

- यदि दो या दो से अधिक कर्त्तव्य एक दूसरे के विरोधाभासी है तब इसे कर्त्तव्यों का टकराव कहा जाता है।
- कर्त्तव्य के टकराव को दूर करने के लिए उच्चतर कर्त्तव्य के लिए निम्नतर कर्त्तव्य को त्यागा जा सकता है। इसके लिए मार्ग दर्शन भी प्राप्त किया जा सकता है– संविधान, कानून, नियम–विनियम और अंतर आत्मा तथा वरिष्ठ जनों से मार्ग दर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

- कुछ विचारकों का मानना है कि कर्त्तव्यों के बीच टकराव जैसा कुछ भी नहीं होता है। व्यक्ति भावनाओं से प्रेरित होता है, इसलिए वह वास्तविक स्थिति को समझ नहीं पाता है। यदि भावनाओं को नियंत्रण कर लिया जाता है तब कर्त्तव्यों का टकराव स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

कर्त्तव्य और अधिकारों में संबंध –

- व्यक्ति के समाज के प्रति दावे अधिकार कहलाते है तथा समाज के व्यक्ति के प्रति दावे कर्त्तव्य कहलाते है।
- साम्यवादी विचारक कर्त्तव्यों पर अधिक बल देते हैं तथा पूंजीवादी विचारक अधिकारों पर अधिक बल देते है इसलिए भारतीय संविधान में मूल कर्त्तव्य USSR से तथा मूल अधिकार USA से लिए गये हैं। परन्तु अधिकारों और कर्त्तव्यों में संतुलन होना चाहिए।
- अधिकार विहीन कर्त्तव्य अव्यवस्था को जन्म देते है तथा कर्त्तव्य विहिन अधिकार निरंकुशता को जन्म देते है।
- महात्मा गांधी के अनुसार अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलु है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है तब अन्य सभी के अधिकारों की रक्षा स्वतः ही हो जाती है।

4. शुभ–

- शुभ वह है जिससे व्यक्ति की आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति होती है इसलिए यह वांछनीय है। शुभ अनेक है परन्तु इन्हें दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

सापेक्ष शुभ – यहाँ शुभ का प्रयोग साधन के रूप में किया गया है। अर्थात् इससे किसी उच्चतर शुभ की प्राप्ति की जा सकती है। यह अधीनस्थ शुभ होता है–

जैसे– आर्थिक शुभ– धन, शारीरिक शुभ– स्वास्थ्य, सामाजिक शुभ– सामाजिक प्रतिष्ठा

निरपेक्ष शुभ –

- यहाँ शुभ का प्रयोग साध्य के रूप में किया गया है। यह परम शुभ होता है। ये किसी अन्य शुभ के अधीनस्थ नहीं है।
- जीवन की सभी गतिविधियाँ निरपेक्ष शुभ को ही प्राप्त करने के लिए की जाती है।
  जैसे– इमेन्यूअल कांट के लिए कर्त्तव्य पालन निरपेक्ष शुभ ।
- उपयोगितावादियों के लिए अधिकत्तम लोगों का अधिकत्तम सुख निरपेक्ष शुभ है।
- हिन्दू धर्म में मोक्ष
- जैन धर्म में कैवल्य
- बौद्ध धर्म में निर्वाण
- सिविल सेवकों के लिए जनकल्याण शुभ है।
- अधिनीतिशास्त्र विचारक G.E. Moore के अनुसार शुभ को परिभाषित नहीं किया जा सकता है इन्होंने अपने यह विचार अपनी किताब 'Principle Ethica' में दिए है।
- शुभ को परिभाषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह सरल प्रत्यय है। तथा इसके कोई भाग नहीं है। परिभाषा हमें भागों के बारे में बताती है इसलिए सिर्फ जटिल प्रत्ययों को ही परिभाषित किया जा सकता है।
- शुभ एक सरल अविश्लेष्य, अद्वितीय, अपरिभाष्य और निरप्राकृतिक प्रत्यय है।
- शुभ सरल है क्योंकि इसके कोई भाग नहीं है इसलिए यह अविश्लेष्य व अपरिभाष्य है।
- प्रत्येक शुभ का एक विशिष्ट अर्थ है इसलिए यह अद्वितीय है। इसे प्राकृतिक गुणों की तरह अनुभव नहीं किया जा सकता है इसलिए यह निरप्राकृतिक है।
- जब हम किसी निरप्राकृतिक प्रत्यय को प्राकृतिक गुणों के आधार पर परिभाषित करते है तब प्रकृतिवादी दोष उत्पन्न होता है। इसके अनुसार शुभ नीतिशास्त्र का मूल प्रत्यय है।
- शुभ के आधार पर ही अन्य नैतिक प्रत्ययों की व्याख्या की जा सकती है।

- शुभ का ज्ञान अंतः प्रज्ञा होता है।

5. सद्‌गुण –

- श्रेष्ठ गुणों को सद्‌गुण कहा जाता है।
- इन्हें मानव जीवन की उत्कृष्टता के रूप में बताया गया है ।
- सद्‌गुण मनुष्य को नैतिक कार्य करने के लिए प्रेरित करते है।
- सद्‌गुण जन्मजात नहीं होते है। ये जन्मजात प्रवृतियों जैसे – भूख, प्यास, नींद, क्रोध, भय, से अलग होते है।
- इन्हें विकसित करने के लिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है । इन्हें विकसित करने के लिए अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता है।
- मानव जीवन के कल्याण के लिए सद्‌गुणी जीवन आवश्यक है।
- ग्रीक विचारकों ने सद्‌गुणों पर अधिक बल दिया है। जैसे– सुकरात के अनुसार सद्‌गुण एक है, वह ज्ञान है।
- प्लेटो के अनुसार सद्‌गुण चार होते हैं– विवेक, साहस, संयम, न्याय। इसमें न्याय सबसे महत्वपूर्ण है।
- प्लेटो ने सद्‌गुणों को जन्मजात माना है।
- अरस्तु के अनुसार मध्यम मार्ग सबसे महत्वपूर्ण सद्‌गुण है।

अरस्तु ने दो प्रकार के सद्‌गुण माने है– बौद्धिक सद्‌गुण, नैतिक सद्‌गुण

- बौद्धिक सद्‌गुण के लिए अध्ययन और नैतिक सद्‌गुण के लिए अभ्यास आवश्यक है।

सद्‌गुणों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. स्वयं के प्रति सद्‌गुण– विवेक, साहस, संयम।
2. दूसरों के प्रति सद्‌गुण– दया, करूणा, विनम्रता।
3. आदर्श के रूप में सद्‌गुण– समानता, स्वतंत्रता, न्याय।

Spring ACADEMY

भगवद्गीता एवं प्रशासन में भूमिका

- भगवद्गीता एक धार्मिक ग्रंथ है जिसमें वेदों और उपनिषदों का सार है परन्तु इसकी शिक्षाएँ धर्मनिरपेक्ष है जिनका प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किया जा सकता है।
- इसमें कर्म योग,ज्ञान योग और भक्ति योग की शिक्षाएँ दी गई है।
- इसमें दुनिया के कई विचारकों,सुधारकों और नेताओं को प्रभावित किया है।
- इसमें 700 श्लोक है जो 18 अध्याय में विभाजित है।
- शंकराचार्य ने ज्ञानयोग पर बल दिया है।
- रामनुजाचार्य और माधवाचार्य ने भक्तियोग पर बल दिया है।
- तिलक और गांधी जैसे नव्य वेदान्तियों ने कर्मयोग की शिक्षा पर बल दिया। यह प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, बह्मसूत्र, भगवद्गीता) का भाग है।
- भगवद्गीता आज भी सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत, व्यावसायिक और प्रशासनिक क्षेत्र में प्रासंगिक है। मूल रूप से नैतिक दुविधाओं को हल करने में मदद करती है।
- महाभारत के संघर्ष में जब युद्ध नायक अर्जुन मोह से ग्रस्त होकर कमजोर हो जाता है तब वह अपने कर्त्तव्य का निर्धारण नहीं कर पाता, तब वह श्री कृष्ण से सहायता मांगता है।
- श्लोक क्रमांक 2 व 3 में श्री कृष्ण ने अर्जुन को कायरता और दुर्बलता का त्याग कर अपनी क्षमताओं में विश्वास जगाने के लिए कहा। उन्होंने अर्जुन से हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर बुराई से लड़ने के लिए तैयार रहने को कहा तथा वीरों के जैसे सोचने के लिए प्रेरित किया।

क्लैव्य मा स्म गमः पार्थ नेतन्त्वय्युपपद्यत।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यवत्वोत्तिष्ठ परन्तपः।।

- भगवाद्गीता की शिक्षाएं आज भी प्रासंगिक है कौरव बुराई के प्रतीक है तथा पाण्डव अच्छाई के प्रतीक है। अच्छाई और बुराई के बीच यह संघर्ष आज भी चल रहा है। समाज में भी और व्यक्ति के भीतर भी।
- इस युद्ध में व्यक्ति को अच्छाई का साथ देना चाहिए तथा बुराई से लड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।
- प्रशासन में भी भगवद्गीता का संदेश प्रासंगिक है सिविल सेवकों को समाज में अच्छाई को बढाना चाहिए तथा बुराई का नाश करना चाहिए।
- जीवन में आने वाली नैतिक दुविधाओं को हल करने के लिए भगवद्गीता की मदद लेनी चाहिए।

मुख्य विचार –

1. निष्काम कर्मयोग –

कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोडस्त्वकर्माणि।।

अर्थ – कर्म पर अधिकार तेरा फल पर कभी भी नहीं। कर्म फल की आवसक्ति से न कर और कर्म को त्यागा भी नहीं जा सकता।

- अर्थात् कर्त्तव्य पालन पर पूरा अधिकार है परंतु कर्म का फल भी इच्छा अनुसार मिले यह आवश्यक नहीं है क्योंकि फल का निर्धारण विभिन्न कारकों के आधार पर होता है।
- फल के प्रति अत्यधिक आसक्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि फल व्यक्ति के नियंत्रण में नहीं है क्योंकि फल का निर्धारण विभिन्न कारकों के आधार पर होता है ताकि फल के बारे में अत्यधिक चिंतन करने से कर्म की दक्षता प्रभावित होती है।

कर्म – कर्म का अर्थ है स्वधर्म का पालन करना अर्थात् व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों का पालन सदैव करना चाहिए।

- जो स्वधर्म का पालन नहीं करते है वे अप्रसिद्धि को प्राप्त करते है। भगवद्गीता के अनुसार स्वधर्म का पालन ही हमारा कर्त्तव्य है। स्वधर्म को वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा समझाया गया है।
- समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक वर्ण का कर्त्तव्य तय किया गया है।
- जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है।
- आश्रम तथा वर्ण के अनुसार किए जाने वाले कार्य कर्त्तव्य कहलाते है।
- भगवद्गीता के अनुसार वर्ण व्यवस्था का निर्माण गुणों के आधार पर किया गया है, उसी आधार पर कर्त्तव्य कहलाते है।

"चातुर्वर्ण्य महा सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

- प्रत्येक परिस्थिति में स्वधर्म का पालन किया जाना चाहिए, भले ही इसमें कोई कमी भी हो।
- परधर्म का पालन श्रेष्ठता के साथ भी नहीं किया जाना चाहिए।
- स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी श्रेष्ठ है परंतु परधर्म सदैव भयावह है।

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्टितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।।

- अनासक्त भाव से स्वधर्म पालन में ही मनुष्य का लौकिक व आध्यात्मिक कल्याण अंतर्निहित है।
- निष्काम भाव से कर्म करने के लिए व्यक्ति को स्वयं को एक निमित्त मानना चाहिए तथा कर्म का श्रेय (अंहकार लाता है) नहीं लेना चाहिए।
- इसी प्रकार एक सिविल सेवक को भी श्रेय के पीछे नहीं भागना चाहिए।

कर्म तीन गुणों के कारण होते हैं–

1. **सत–** यह सद्गुणों को प्रदर्शित करता है यह सुख व ज्ञान के प्रति राग उत्पन्न करता है।
2. **रज–** यह ऊर्जा को प्रदर्शित करता है, यह कर्म के प्रति राग उत्पन्न करता है।
3. **तम–** यह दुर्गुणों को प्रदर्शित करता है, अज्ञान और भ्रम इससे उत्पन्न होते है।
    - सिविल सेवकों को भी अपनी ऊर्जा का प्रयोग समाज में सकारात्मक परिवर्तन लोने के लिए करना चाहिए अन्यथा नकारात्मकता फैलेगी।
    - सिविल सेवकों को सात्विक गुणों का विकास करना चाहिए तामसिक गुणों को दूर करना चाहिए।

सकाम कर्म –

- वे कर्म जो कि फल की आसक्ति तथा कर्त्तपन के अंहकार से किए जाते है सकाम कहलाते है। ये कर्म बंधनकारी होते है।

ये तीन प्रकार के होते है–

संचित कर्म – पूर्व जन्म के वे कर्म जिनका फल भोगना अभी बाकी है।

प्रारब्ध – पूर्व जन्म के वे कर्म जो कि अपना फल दे चुके हैं तथा जिनके कारण वर्तमान जीवन अस्तित्व में आया है।

संचियमान कर्म – ये कर्म वर्तमान जीवन के होते है।

योग –

- गीता में योग शब्द मूलतः आत्मा एवं परमात्मा के संयोग के साधन मार्ग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त गीता में कर्म की कुशलता (योगः कर्मसु कोशलम्) तथा समत्व को योग कहा गया है।

('समत्वं योग उच्यते')

- गीता में योग के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा की गई हैः–
  जैसे– कर्मयोग, समत्व योग, सांख्ययोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, बुद्धियोग।

- एकमात्र कर्मयोग ही आध्यात्मिक आदर्श को जीवन संघर्ष के व्यस्ततम क्षेत्र में पहुंचा देता है।
- कर्मयोग का लक्ष्य स्वयं की मुक्ति और लोक संग्रह (जन–कल्याण) के माध्यम से जगत का कल्याण है।
- जब कोई कर्म, कर्मफल आसक्ति से रहित होकर कर्तापन के अहंकार से मुक्त होकर तथा ईश्वर की आराधना के निमित किया जाता है, तो वह कर्मयोग कहलाता है।
- कर्म का कर्त्तापन और भोग ईश्वर को समर्पित करने पर कर्म हमारे लिए साधना बन जाता है,
- कर्मफल की आसक्ति और कर्तापन / कर्त्तव्य के अहंकार से किया गया प्रत्येक कर्म हमारे लिए बंधन स्वरूप है।
- निष्काम कर्म योग को प्राप्त करने के लिए नियमित अभ्यास व वैराग्य आवश्यक है।
- सिविल सेवकों को भी दक्षता से अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए तथा फल के प्रति आसक्ति हुई तो वह व्यक्ति लालच, भेदभाव, पूर्वाग्रह, अदक्षता आदि से ग्रसित होगा।
- भगवद्गीता निष्क्रियता को नकारती है व्यक्ति निरंतर कर्म कर रहा है यहां तक की सोते हुए भी कर्म चल रहे है।

2. अनासक्ति –

- जब व्यक्ति इन्द्रिय विषयों के बारे में चिंतन करता है तब उन विषयों के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामनाएं उत्पन्न होती है।
- यदि कामनाओं की पूर्ति नहीं हो तो क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध से विवेक समाप्त हो जाता है जिससे स्मृति का नाश होता है। स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश होता है।
- बुद्धि के नाश से मनुष्य का नाश हो जाता है। इसलिए इन्द्रिय विषयों का चिंतन नहीं किया जाना चाहिए।

3. स्थितप्रज्ञता –

- यह एक मानसिक अवस्था है, जिसमें व्यक्ति पूर्ण बौद्धिक स्थिरता को प्राप्त करता है।
- भगवद्गीता के अनुसार वह व्यक्ति स्थितप्रज्ञ है जो कि सुख–दुःख,लाभ–हानि,असफलता–सफलता प्रशंसा–निंदा, जीत–हार, गर्मी–सर्दी आदि में एक समान भाव रखता है।
- अर्जुन को सलाह दी गई कि वह स्थितप्रज्ञ बनें। अनासक्ति से स्थितप्रज्ञता को प्राप्त किया जा सकता है।
- एक प्रशासक के लिए स्थितप्रज्ञ होना महत्वपूर्ण है, इससे भावनाएं नियंत्रण में रहती है और व्यक्ति तथ्यों व साक्ष्यों को अधिक महत्व देता है जो निर्णय को दक्ष और निष्पक्ष बनाता है।
- स्थितप्रज्ञता का प्रयोग करके जीवन की विभिन्न समस्याओं को हल किया जा सकता है।
- स्थितप्रज्ञता से व्यक्ति अपने स्वकर्त्तव्यों की पहचान करता है तथा सभी प्रकार के टकरावों से दूर हो जाता है।

4. प्रवृति और निवृति के बीच समन्वय –

- निवृति का अर्थ– लौकिक जीवन को त्याग देना।
- प्रवृति का अर्थ– भौतिकवादी जीवन।
- भगवद्गीता इन दोनों अतिवादी विचारों का समर्थन नहीं करती है इसके अनुसार एक व्यक्ति को सामान्य जीवन जीना चाहिए,समाज में रहना चाहिए लेकिन सांसारिक जीवन में रहते हुए कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए तथा किसी के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए।
- कर्त्तव्यों से भागना सन्यास का मार्ग नहीं है।
- एक प्रशासक को भी इसी तरह कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए और जीवन में संतुलन बनाए रखना चाहिए।

5. ज्ञान योग –

- भगवद्गीता के अनुसार ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान ही अंतिम ज्ञान है।
- ब्रह्मज्ञान की स्थिति में ज्ञानी समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा और अपनी आत्म को समस्त प्राणियों में देखता है। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति किसी से घृणा एवं भेदभाव नहीं करता है। ऐसा ज्ञान किसी तत्वदर्शी गुरू के प्रति श्रद्धा प्रकट करके प्राप्त करना चाहिए।
- ब्रह्मा विषयक ज्ञान के श्रवण, मनन और निधिध्यासन द्वारा शिष्य के समस्त संशयों का निराकरण हो जाता है।
- वेदों में मोक्ष/ज्ञान प्राप्त करने के तीन तरीके हैं–
    - श्रवण– ज्ञान को सुनना।
    - मनन–ज्ञान पर तर्कपूर्वक चिंतन करना।
    - निधिध्यासन– निरंतरध्यान।

6. आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म–

- भगवद्गीता में आत्मा का अमर और शाश्वत माना गया है।
- इसे न तो शास्त्रों से काटा जा सकता है और न ही अग्नि इसे जला सकती है न जल इसे गला सकता है तथा न ही वायु इसे सुखा सकती है। अर्थात् यह भौतिक जगत से परे है–

नैनं छिनृन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेद्यन्त्योदपि न शोषयन्ति मारूतः।।

- जब शरीर का अंत होता है तब आत्मा का अंत नहीं होता है।
- जिस प्रकार व्यक्ति पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्रों को धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर नए शरीर को धारण करती है।

वांसामि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्याति यथा विहाय।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान, न्यानि संयाति नवानि देही।।

7. ईश्वर का अवतार –

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।"

- भगवद्गीता अवतार वाद को स्वीकार करती है।
- इसके अनुसार जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है तब ईश्वर के द्वारा अवतार लिया जाता है और वह धर्म की पुनः स्थापना करते है।

परित्राणय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।।

- ईश्वर के द्वारा साधुजनों की रक्षा की जाती है तथा दुष्टजनों का नाश करके समय समय पर धर्म की स्थापना की जाती है।

8. राजर्षि = राजा + ऋषि

- राजा निस्वार्थ जनकल्याण को प्रदर्शित करता है तथा ऋषि दैवीयता को।
- निःस्वार्थभाव जनकल्याण के लिए कार्य किया जाना चाहिए, जगत को ईश्वर की अभिव्यक्ति बताया गया है।
- सिविल सेवकों को भी निस्वार्थ भाव से जनकल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

9. देवीय और असुरी सम्पदा का भेद –

देवीय सम्पदा –

- निडरता, हृदय की पवित्रता, ज्ञान योग की स्थिरता, दान, इंद्रियों पर नियंत्रण, यज्ञ, स्व अध्ययन, तपस्या और सरलता का अभ्यास,दूसरों के प्रति हिंसा नहीं करना, क्रोध में कमी, त्याग, अत्याचार, दूसरों की आलोचना का अभाव।
- अन्य प्राणियों के प्रति करूणा, लोभ का अभाव, सौम्यता, स्थिरता, ऊर्जा, क्षमा, दृढ़ता, घृणा का अभाव, अहंकार की अनुपस्थिति।

असुरी सम्पदा–

- आत्म महिमामण्डन, घृणा, वासना, क्रोध, क्रूरता, अज्ञानता, हृदय की अशुद्धता, लोभ, बुराई, झूठ की पूर्ति करना।

10. आपद् धर्म –

- संकट काल में व्यक्ति स्वयं के कर्त्तव्यों को छोड़कर अन्य के कर्त्तव्यों का पालन भी कर सकता है इस अवधारणा को आपद धर्म कहा जाता है।
- प्रशासन में भी सकंटकाल में अन्यों के कर्त्तव्यों का निर्वहन किया जा सकता है।
  जैसे– कोरोना महामारी, बाढ़, भूकम्प व प्राकृतिक आपदाएं।

11. भक्ति योग –

- इसका अर्थ है व्यक्ति सब कुछ त्याग कर ईश्वर की शरण में आ जाए तब ईश्वर उसे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते है।

12. योगक्षेम –

- यह भक्ति योग की अवधारणा है। इसके तहत ईश्वर अपने भक्त को सब कुछ उपलब्ध करवाते है, जो कि पहले से उपलब्ध नहीं है तथा जो पहले उपलब्ध है उसकी रक्षा की जाती है।
- प्रशासक द्वारा भी विकासात्मक उपलब्धियों की रक्षा की जानी चाहिए और नये कार्यों को भी संपादित करना चाहिए।

13. लोक संग्रह –

- इसका सामान्य अर्थ है 'जन कल्याण'।
- मुनष्य को स्वयं के कर्त्तव्यों का पालन जनकल्याण के लिए करना चाहिए।
- श्रेष्ठ मनुष्य समाज में एक नायक की भूमिका निभाता है अन्य जन उनका अनुसरण करते है।
- इसलिए उन्हें अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन निष्काम भाव से करना चाहिए।
- कर्त्तव्यों के टकराव को लोक संग्रह के माध्यम से दूर किया जा सकता है अर्थात् वे कर्त्तव्य किए जाने चाहिए जिससे जनकल्याण सुनिश्चित होता है।
- सिविल सेवको को भी अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन जनकल्याण के लिए करना चाहिए। सिविल सेवक समाज और प्रशासन के लिए रोल मॉडल है। इसलिए उनका आचरण श्रेष्ठ होना चाहिए।

भगवत्गीता से सीखे जाने वाले गुण –

1. स्थितप्रज्ञता से सीखे जाने वाले गुण– सत्यनिष्ठा, सहिष्णुता, धैर्य, वस्तुनिष्ठता, निष्पक्षता, ईमानदारी, सहानुभूमि।
2. निष्काम से सीधे जाने वाले गुण– कर्त्तव्य परायणता, अनासक्ति।
3. लोकसंग्रह से सीखे जाने वाले गुण– जनकल्याण, जनसेवा, करूणा, समर्पण।

भगवद्गीता और इमेन्यूअल कांट की तुलना

समानताएँ –

1. दोनों ही परिणाम निरपेक्षवादी नीतिशास्त्र का समर्थन करते है।
2. दोनों ही कर्त्तव्यों पर अत्यधिक बल देते है। (पालन)
3. दोनों ही भावनाओं को नियंत्रित करने पर बल देते है।
4. दोनों ही संकल्प स्वातंत्र्य को स्वीकार करते है।
5. दोनों ही ईश्वर का अस्तित्व, आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म को स्वीकार करते है।

असमानताएँ –

1. भगवद्गीता एक धार्मिक ग्रंथ है, जबकि कांट का नीतिशास्त्र धर्म से स्वतंत्र है।
2. कांट का नीतिशास्त्र अत्यधिक कठोर है, जबकि भगवद्गीता का नीतिशास्त्रा लचीला है।
3. कांट के लिए ईश्वर व आत्मा साधन है तथा नैतिकता साध्य है, जबकि भगवद्गीता में ईश्वर साध्य है तथा नैतिकता साधन है।
4. भगवद्गीता कर्म के सिद्धांत को स्वीकार करती है जबकि कांट ने इसकी चर्चा नहीं की है।

Springboard ACADEMY

निजी व सार्वजनिक संबंधों में नीतिशास्त्र

	निजी संबंध		सार्वजनिक संबंध
1.	इसका प्रभाव क्षेत्र सीमित होता है।	1.	प्रभाव क्षेत्र व्यापक होता है।
2.	घनिष्ठता अधिक होती है तथा औपचारिकता कम।	2.	घनिष्ठता कम तथा औपचारिकता अधिक होती है।
3.	ये भावनाओं, आपसी स्नेह, विश्वास आदि पर आधारित होते है।	3.	यह कानून, नियम, आचार संहिता आदि पर आधारित होते है।
4.	ये आत्मनिष्ठ होते हैं।	4.	ये वस्तुनिष्ठ होते हैं।
5.	ये नैतिक रूप से बाध्यकारी होते है।	5.	ये कानूनी रूप से बाध्यकारी होते है।
6.	यदि कर्तव्यों का पालन नही किया जाता है तब सामाजिक आलोचना होती है।	6.	यदि कर्त्तव्यों का पालन नहीं किया जाता है तब कानूनी कार्यवाही की जाती है।
7.	यह अपेक्षाकृत स्थायी होते है। उदाहरण– पति–पत्नी, मित्र, परिवारजन।	7.	यह कम स्थायी होते है। उदाहरण– सिविल सेवक, व्यापारी, सहनागरिक।

सार्वजनिक संबधों/ जीवन में नैतिकता के महत्वपूर्ण तत्व –

1. पारदर्शिता – सभी प्रकार की सूचनाओं को सार्वजनिक रूप से उपलब्ध करवाया जाना चाहिए जिससे की जनता का विश्वास बना रहे।
2. ईमानदारी और सत्यनिष्ठा – सार्वजनिक जीवन में उपलब्ध करवायी जाने वाली सूचनाएं सत्य होनी चाहिए। किसी प्रकार की धोखाधड़ी नहीं की जानी चाहिए। सार्वजनिक जीवन में दिए गए वचनों का पालन किया जाना चाहिए।
3. सम्मान – सार्वजनिक संबंधों में विनम्रता और सम्मान का प्रयोग किया जाना चाहिए।
4. कानून का पालन – सभी प्रकार के कानून का पालन किया जाना चाहिए।
5. जवाबदेहिता – सार्वजनिक जीवन में किए गए कार्यों और लिए गए निर्णयों की उचित व्याख्या की जानी चाहिए।
6. निष्पक्षता – सार्वजनिक जीवन में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाना चाहिए।

निजी संबंधों में नैतिकता के महत्वपूर्ण तथ्य –

1. आपसी सम्मान और विश्वास
2. आपसी स्नेह व देखभाल
3. उत्तरदायित्व का निर्वहन
4. सत्यता
5. गोपनीयता
6. त्याग

आदर्शतः सार्वजनिक संबंधों व निजी संबंधों में भेद होना चाहिए क्योंकि–

- दोनों का कार्यक्षेत्र अलग– अलग है।
- यदि ये एक दूसरे को प्रभावित करते है तो हितों का टकराव उत्पन्न हो सकत है तथा भाई भतीजावाद को बढ़ावा मिलता है।
- निजी और सार्वजनिक संबंधों का मूल्यांकन अलग– अलग प्रकार से किया जाता है।

- दोनों की प्रकृति भिन्न है सार्वजनिक संबंध अत्यधिक जटिल होते है। व्यावहारिक रूप से सार्वजनिक और निजी संबंधों को अलग–अलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि–
- ना तो कोई संबंध पूर्णतः निजी है और ना ही कोई संबंध पूर्णत सार्वजनिक।

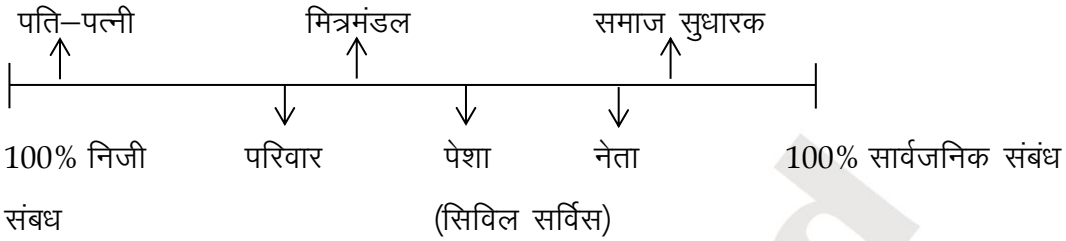

- यदि इन संबंधों को अलग–अलग किया गया तो इसका प्रबंधन अत्यधिक मुश्किल हो जाएगा।

सार्वजनिक सम्बन्धों का निजी संबंधों पर प्रभाव–

सकारात्मक प्रभाव –

1. यदि कोई व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में सफल है तब निजी संबंध भी स्वस्थ रहते है, ऐसा व्यक्ति निजी संबंधों में प्रेरणा स्त्रोत की भूमिका निभाता है।
2. सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कौशल सीखता है, जिनका प्रयोग निजी जीवन में भी किया जा सकता है।
3. सार्वजनिक सम्बन्धों की प्रकृति लेन–देन की होती है, जबकि निजी संबंधों में निःस्वार्थता होती है।

नकारात्मक प्रभाव –

1. सार्वजनिक सम्बधों के कारण व्यक्ति निजी संबंधों को पर्याप्त समय नहीं दे पाता है।
2. सार्वजनिक जीवन के तनाव निजी जीवन में भी परिलक्षित होते है।

निजी संबंधों का सार्वजनिक संबंधों पर प्रभाव –

सकारात्मक प्रभाव –

1. निजी संबंधों से व्यक्ति अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का प्रबंधन सीखता है। जिसका प्रयोग सार्वजनिक जीवन में भी किया जा सकता है। जैसे – भावनाओं का प्रबंधन
2. यदि निजी संबंध स्वस्थ है तब सार्वजनिक संबंधों के उत्तरदायित्वों का निर्वहन दक्षता से किया जा सकता है।
3. यदि व्यक्ति सार्वजनिक जीवन मे असफल होता है तब निजी संबंधों का भावनात्मक और नैतिक सहयोग आवश्यक है।

नकारात्मक प्रभाव–

1. निजी जीवन के पूर्वाग्रह सार्वजनिक जीवन में भी परिलक्षित होते है।
2. निजी जीवन का तनाव सार्वजनिक जीवन में भी अभिव्यक्त होता है अतः निजी और सार्वजनिक संबंधों के बीच सन्तुलन होना चाहिए यदि उत्तरदायित्वों में टकराव होता है तथा व्यक्ति सार्वजनिक पद पर आसीन है तब उसे सार्वजनिक संबंधों को अधिक महत्व देना चाहिए।
    - कुछ लोग किसी सार्वजनिक पद पर आसीन नहीं होते फिर भी सार्वजनिक जीवन को अधिक महत्व देते है उनकी नैतिकता का स्तर उच्च होता है।

- नारीवादी नीतिशास्त्रियों के अनुसार निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन में कोई भेद नहीं होना चाहिए। निजी जीवन में भी सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है।
- सिविल सेवकों के निजी और सार्वजनिक जीवन को नियमित करने के लिए 'आचार संहिता' का निर्माण किया गया है।

निजी जीवन की आचार संहिता –

1. एक से अधिक विवाह नहीं किए जाने चाहिए।
2. दहेज ना लिया जाना चाहिए और ना ही दिया जाना चाहिए तथा माता–पिता और जीवन साथी और बच्चों की देखभाल की जानी चाहिए।
3. घरेलू हिंसा में संलिप्त नहीं होना चाहिए।
4. बाल मजदूरी को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।
5. रूढिवाद और अंधविश्वास को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।

सार्वजनिक जीवन की आचार संहिता –

1. बिना सरकार की अनुमति के कोई सम्मान या पुरस्कार नहीं लिया जाना चाहिए।
2. आधिकारिक क्षमता में प्राप्त की गई सूचनाओं को सार्वजनिक नहीं किया जाना चाहिए, परन्तु RTI के तहत मांगी गयी सूचनाओं को सार्वजनिक किया जाना चाहिए।
3. सरकारी कार्याक्रमों में निजी व्यक्ति को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।
4. सरकारी कार्याक्रमों और नीतियों की सार्वजनिक आलोचना नहीं की जानी चाहिए।
5. साम्प्रदायिकता और भाई–भतीजावाद, जातिवाद आदि को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।

नैतिक संहिता और आचार संहिता –

	नैतिक संहिता		आचार संहिता
1.	नैतिकता पर आधारित सिद्धांतों का समूह जिसके द्वारा सही या गलत के बारे में नैतिक निर्णय किए जाते है।	1.	नियमों और विनियमों का समूह जो विशिष्ट परिस्थियों मे उचित व्यवहार की व्याख्या करता है।
2.	यह बताता है कि निर्णय कैसे किये जाते है।	2.	कर्मचारियों को कैसे कार्य करना चाहिए।
3.	यह मूल्यों पर केन्द्रित है।	3.	यह नियमों और अनुपालन पर केन्द्रित है।
4.	इसका दायरा संकीर्ण है।	4.	इसका दायरा वृहद् है।
5.	इसकी प्रकृति सामान्य है।	5.	इसकी प्रकृति विशिष्ट है।
6.	यह सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होता है।	6.	यह सिर्फ कर्मचारियों को ही उपलब्ध होता है।
7.	यह सदैव कानूनी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है।	7.	इसे कानूनी रूप से लागू किया जा सकता है।
8.	इसका आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है।	8.	इसका आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है। • आचार संहिता नैतिक संहिता पर आधारित होती है।

- दोनों ही सिविल सेवकों को नैतिक व्यवहार के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते है।

सिविल सेवकों के आचरण में सुधार के लिए निम्न समितियों का गठन किया गया–

1. ली आयोग
2. होता समिति
3. ए. डी. गोरवाला समिति
4. संथानम समिति
5. प्रथम और द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग
6. नोलन समिति (1994 में U.K. में बनाई गई)

नोलन समिति के द्वारा सिविल सेवकों के 7 आधारभूत मूल्य बताए गए है–

1. वस्तुनिष्ठता
2. निः स्वार्थता
3. पारदर्शिता
4. ईमानदारी
5. जवाबदेहिता
6. सत्यनिष्ठा
7. नेतृत्व

1. वस्तुनिष्ठता –

- सिविल सेवकों को सभी प्रकार के वैचारिक, काल्पनिक एवं रूढ़िगत पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिए।
- पूर्वाग्रहों से युक्त व्यक्ति उचित न्यायपूर्ण निर्णय नही ले सकता है।
- पूर्वाग्रहों की पहचान कर उन्हें दूर किया जाना चाहिए। इसके लिए अन्तरावलोकन आवश्यक है।
- सार्वजनिक नियुक्तियां और लाभ के वितरण में योग्यता को आधार बनाया जाना चाहिए।

2. निःस्वार्थता – कर्त्तव्यों का निर्वहन निःस्वार्थ भाव से किया जाना चाहिए।

- सभी निर्णय जनहित में लिये जाने चाहिए।
- वेतन तथा अन्य सुविधाओं को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।
- स्वयं को समाज के प्रति ऋणी समझना चाहिए।
  उदाहरण : माता का सभी बच्चों के प्रति प्यार

3. पारदर्शिता –

- सरकारी कामकाज और निर्णयों में पारदर्शिता लाई जानी चाहिए इससे भ्रष्टाचार कम होता है तथा जनसहभागिता से लोकतांत्रिक मूल्य सशक्त होते है।
- सूचना का अधिकार तथा ई–गवर्नेंस जैसे साधनों का प्रयोग किया जा रहा है।

4. ईमानदारी –

- अधिकारों का प्रयोग सिर्फ कर्त्तव्यों के दक्ष व प्रभावी निर्वहन के लिए किया जाना चाहिए।
- रिश्वत नहीं ली जानी चाहिए और ना ही देनी चाहिए।
- सरकारी/ सार्वजनिक कार्यों में निजी हितों को सार्वजनिक किया जाना चाहिए। हितों के टकराव को दूर किया जाना चाहिए।

5. जवाबदेहिता –

- सिविल सेवकों को अपने कार्यों और निर्णयों की उचित व्याख्या करनी चाहिए।
- जवाबदेहिता से कर्त्तव्य व अधिकारों के बीच संतुलन स्थापित किया जाता है।
- विभागीय कार्यवाही जवाबदेहिता के आधार पर ही की जाती है।

6. सत्यनिष्ठा –

- मन, कर्म और वचन में एकरूपता होनी चाहिए, विचारों में विरोधाभास नहीं होना चाहिए तथा विचारों के अनुरूप ही आचरण होना चाहिए। व्यक्ति का आचरण परिस्थितियों और परिणामों पर आधारित नहीं होना चाहिए।

सत्यनिष्ठा के प्रकार–

i. **व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा**– व्यक्ति के विचारों में विरोधाभाष नहीं होना चाहिए विचारों के अनुरूप ही सदैव आचरण किया जाना चाहिए, दूसरों की गलतियों से सीखने का गुण होना चाहिए।

ii. **बौद्धिक सत्यनिष्ठा**– स्वयं का मूल्यांकन उन्हीं मापदण्डों और कठोरता से किया जाना चाहिए जिसका प्रयोग दूसरों के मूल्यांकन के लिए किया गया है।
   - स्वयं के विचारों में विरोधाभास नहीं होना चाहिए, वैचारिक विरोधाभास की पहचान कर उन्हें दूर किया जाना चाहिए। इसका विलाम–बौद्धिक पाखण्ड।

iii. **व्यावसायिक सत्यनिष्ठा**– जिस व्यवसाय में व्यक्ति कार्य कर रहा है सदैव उसकी आचार संहिता का पालन करना चाहिए।

सत्यनिष्ठा का दार्शनिक आधार –

- परिणाम निरपेक्षवादी नीतिशास्त्रियों ने सत्यनिष्ठा को दार्शनिक आधार प्रदान किया है।
- इनमें सबसे महत्वपूर्ण है **'इमेन्युअल कांट'**
- कांट के अनुसार नैतिक नियमों का पालन निरपेक्ष आदेश के रूप में किया जाना चाहिए अर्थात् नैतिक नियम देश, काल, परिस्थिति या परिणाम के सापेक्ष नहीं होनी चाहिए।
- नैतिक नियमों का पालन कठोरता से किया जाना चाहिए इसमें किसी भी प्रकार का अपवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता है, कर्त्तव्य चेतना से किए गए कार्य नैतिक है।
- भगवद्गीता के अनुसार व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में सर्वधर्म का पालन करना चाहिए।
- अतः प्रज्ञावादियों के अनुसार प्रत्येक परिस्थिति में अंतःकरण के अनुसार आचरण होना चाहिए।
- महात्मा गांधी के अनुसार– सत्य और अहिंसा जैसे मूल्यों का प्रयोग सदैव किया जाना चाहिए।
- साधन और साध्य दोनों ही पवित्र होने चाहिए।
- व्यवसायिक/व्यावहारिक नीतिशास्त्र के अनुसार –व्यक्ति का आचरण व्यवसाय की आचार संहिता के अनुसार होना चाहिए।

सत्यनिष्ठा के लाभ –

1. इससे व्यक्ति की विश्वसनीयता बढ़ती है।
2. इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।
3. निर्णय लेने की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है तथा व्यक्ति दुविधाओं का हल आसानी से कर सकता है।

7. नेतृत्व –

- नेतृत्वकर्ता को टीम भावना से कार्य करना चाहिए अर्थात् जो भी असफलता या निंदा होती है उसका सामना नेतृत्वकर्ता को करना चाहिए तथा सफलता का श्रेय टीम को दिया जाना चाहिए। (इंजी. सतीश धवन और अब्दुल कलाम)
- नेतृत्वकर्त्ता दूरदर्शी होना चाहिए अर्थात् वह भविष्य की सम्भावनाओं और चुनौतियों का सही आकलन कर सकते है।
- एक अच्छा नेतृत्वकर्ता वह होता है जो कि एक अच्छा अनुयायी भी हो।

राजनीतिक एवं नैतिक अभिवृत्ति

अभिवृति –

- किसी मनोवैज्ञानिक विषय जैसे– वस्तु, व्यक्ति, स्थान के प्रति सकारात्मक और नकारात्मक दृष्टिकोण अभिवृति कहलाता है।
- अभिवृति के 3 मुख्य घटक है
  1. भावनात्मक पक्ष
  2. संज्ञानात्मक पक्ष
  3. व्यवहारात्मक पक्ष

भावनात्मक पक्ष –

- जब व्यक्ति मनोवैज्ञानिक विषय के सम्पर्क में आता है तब किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं इससे अभिवृति का निर्धारण होता है।
- सकारात्मक भाव– सकारात्मक अभिवृति।
- नकारात्मक भाव– नकारात्मक अभिवृति।

संज्ञानात्मक पक्ष –

- यदि मनोवैज्ञानिक विषय के बारे में सकारात्मक सूचनाएं उपलब्ध हो तब अभिवृति सकारात्मक होती है तथा यदि नकारात्मक सूचनाएं उपलब्ध हो तो अभिवृति भी नकारात्मक होती है।

व्यवहारात्मक पक्ष –

- यदि मनोवैज्ञानिक विषय के सम्पर्क में आने के बाद व्यक्ति का व्यवहार सकारात्मक रहता है तो अभिवृति सकारात्मक होगी, यदि व्यवहार नकारात्मक है तो अभिवृति भी नकारात्मक होगी।
- यह आवश्यक नहीं है कि उपर्युक्त तीनों पक्ष सदैव उपस्थित हो कई बार ऐसा देखा गया है कि व्यक्ति में भावनात्मक एवं संज्ञानात्मक पक्ष तो उपस्थित होते है परन्तु व्यवहारात्मक पक्ष उपस्थित नहीं होता है।
- सामान्यतः अभिवृति जन्मजात नहीं होती इसे सीखा जाता है। सामान्यतः अभिवृति स्थाई होती है परन्तु इसमें परिवर्तन भी लाया जा सकता है।
- अभिवृति का संबंध मत विश्वास, मूल्य और व्यवहार से होता है।

राजनीतिक अभिवृति –

- किसी राजनीतिक दल,संस्था, नेता, विचारधारा आदि के प्रति सकारात्मक एवं नकारात्मक दृष्टिकोण राजनीतिक अभिवृति कहलाती है।

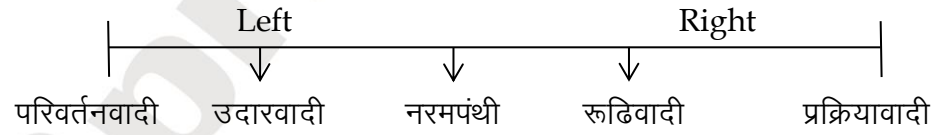

1. परिवर्तनवादी – ये वर्तमान की आर्थिक व सामाजिक स्थिति से संतुष्ट नहीं होते एवं बड़े परिवर्तन चाहते है इसके लिए हिंसा का भी प्रयोग करते है।
2. उदारवादी – ये भी वर्तमान की व्यवस्था में सतत् सुधार चाहते है, परन्तु ये हिंसा का समर्थन नहीं करते है।
3. नरमपंथी – ये वर्तमान की राजनीतिक व्यवस्था में बड़े परिवर्तन नहीं चाहते है। उस व्यवस्था के अधीन रहते हुए छोटे बदलाव चाहते है।
4. रूढ़िवादी – इनके लिए आर्थिक एवं सामाजिक मुद्दे अधिक महत्वपूर्ण नहीं होते है। ये सांस्कृतिक मुद्दों को अधिक महत्व देते है। इसके लिए संस्कृति का संरक्षण महत्वपूर्ण है।
5. प्रतिक्रियावादी – ये वर्तमान की व्यवस्था से संतुष्ट नहीं होते इसलिए पुरातन व्यवस्था को लागू करना चाहते है। इसके लिए हिंसा का समर्थन करते है।

राजनीतिक अभिवृति के निर्धारक कारक –

1. आर्थिक कारक – जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है वे व्यवस्था में बड़े परिवर्तनों के समर्थक नहीं होते है तथा जिनकी आर्थिक स्थिति खराब होती है वे व्यवस्था में बड़े परिवर्तन के समर्थक होते है।
2. आयु – युवा व्यक्ति बड़े परिवर्तनों का समर्थन करते है क्योंकि वह अच्छे भविष्य की कल्पना करता है जबकि वृद्ध व्यक्ति बड़े परिवर्तनों का समर्थन नहीं करता हे क्योंकि उनके लिए नए परिवर्तनों के अनुकूल बनना मुश्किल है।
3. मनोवैज्ञानिक प्रवृति – यदि व्यक्ति आक्रामक प्रवृति का है तब वह राजनीति में हिंसा का समर्थन करता है, परन्तु शांत प्रवृति का व्यक्ति हिंसा का समर्थन नहीं करता है, बहिर्मुखी व्यक्ति अपने राजनीतिक अभिवृति को अधिक अभिव्यक्त करता है।
4. परिवार – पारिवारिक मूल्यों से राजनीतिक अभिवृति का निर्माण होता है। यदि परिवार रूढिवादी है तब व्यक्ति की राजनीति अभिवृति रूढ़िवादी हो सकती है, यदि परिवार उदारवादी है तब व्यक्ति अपनी राजनीतिक अभिवृत्ति का निर्धारण स्वयं करता है।
5. धर्म – जिन लोगों की धार्मिक आस्था अधिक होती है उनके लिए धार्मिक मुद्दे अधिक महत्वपूर्ण होते है। जैसे – राम मंदिर, तीन तलाक आदि।
6. लिंग – पिछले कुछ वर्षों से महिलाओं से संबंधित मुद्दे राजनीति से अधिक महत्वपूर्ण हो गए है। जैसे– महिलाओं का आरक्षण, समान वेतन आदि।
7. अन्य कारक – क्षेत्र, भाषा, व्यक्तित्व, तात्कालिक मुद्दे

- सिविल सेवकों की राजनीतिक अभिवृति निष्पक्ष होनी चाहिए, क्योंकि भारत एक बहुदलीय लोकतंत्र है। जिसमें सेवकों को अलग–अलग राजनीतिक दलों के साथ कार्य करना पड़ता है।
- साम्यवादी देशों में प्रतिबद्ध नौकरशाही की मांग की जाती है। अर्थात् सिविल सेवक साम्यवादी दल के प्रति प्रतिबद्ध होने चाहिए। परंतु भारत में ऐसी परिस्थिति नहीं है।
- भारत में सिविल सेवकों को संविधान,कानून, नियम, विनियम, प्राकृतिक न्याय आदि के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए।
- किसी भी राजनीतिक दल, विचारधारा या उम्मीदवार का समर्थन नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी राजनीतिक दल को चंदा नहीं दिया जाना चाहिए।
- राजनीतिक दल के प्रतीक/ध्वज को कार्यालय,वाहन,घर पर प्रदर्शित नहीं किया जाना चाहिए। मत देने का अधिकार है लेकिन मत प्राथमिकता को सार्वजनिक नहीं किया जाना चाहिए।

निम्नलिखित मूल्यों के प्रति सकारात्मक अभिवृति होनी चाहिए–

1. संवैधानिक मूल्य
2. सिविल सेवकों के मूलभूत मूल्य
3. लोकतांत्रिक मूल्य
4. धर्म निपरपेक्षता
5. सामाजिक,आर्थिक व राजनीतिक न्याय
6. सत्ता का विकेन्द्रीकरण
7. जन सहभागिता
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तार्किकता
9. सर्वोदय
10. विधि का शासन

नैतिक अभिवृति –

- नैतिक मुद्दों के प्रति सकारात्मक और नकारात्मक दृष्टिकोण को नैतिक अभिवृति कहते है।
- नैतिक अभिवृति सही क्या है? और गलत क्या है? के नैतिक विश्वासों पर आधारित है। जैसेः– मृत्युदण्ड का समर्थन या विरोध, इच्छामृत्यु का समर्थन या विरोध।
- परिवार, समाज, धर्म और शिक्षा उन नैतिक विश्वासों को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।
- प्रशासन के बढ़ते आकार और भूमिका व समाज पर इसके प्रभाव के संदर्भ में, सिविल सेवकों से अपेक्षा की जाती है कि वे न केवल अपने लिए बल्कि समाज के लिए बड़े स्तर पर उच्च नैतिक मानकों की स्थापना करें।
- पॉल. एच. एपल्बी के अनुसार नैतिकता और प्रशासन को अलग नहीं किया जा सकता है।
- उन्होंने एक नैतिक प्रशासक में निम्नलिखित विशेषताओं को समाहित किया–
  - जिम्मेदारी की भावना।
  - संचार और कार्मिक प्रशासन में कौशल।
  - संस्थागत संस्थानों का निर्माण ओर उपयोग करने की क्षमता।
  - समस्या समाधान मे संलग्न होने की इच्छा।
  - एक टीम के रूप में दूसरों के साथ काम करने के लिए तैयार रहना।
  - नए विचारों को आरम्भ करने के लिए व्यक्तिगत आत्म विश्वास।
  - नौकरशाही में सिर्फ शक्ति का प्रयोग उचित नहीं है, जनता की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं संवेदनाओं को वरीयता दी जानी चाहिए।

सिविल सेवकों में निम्नलिखित मूल्यों के प्रति सकारात्मक अभिवृति चाहिए–

भावनात्मक स्तर पर

1. सहानुभूति
2. समानुभूति
3. करूणा
4. दया
5. निःस्वार्थता
6. भावनात्मक बुद्धिमता
7. अंतरात्मा की आवाज

संज्ञानात्मक स्तर पर

1. तार्किकता
2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण
3. अनासक्ति
4. सीखने की भावना

व्यवहारात्मक स्तर पर–

1. कठोर परिश्रम
2. कर्तव्य परायणता
3. त्याग
4. निष्काम कर्म
5. निष्पक्षता
6. वस्तुनिष्ठता
7. सत्यनिष्ठता

Springboard ACADEMY

भारतीय प्रशासन में नैतिक चिंताएं

नैतिक चिंताएं – ऐसी परिस्थिति जिसमें किसी नैतिक सिद्धांत या मूल्य का या तो उल्लंघन हो चुका है या उल्लघंन होने वाला है। नैतिक चिंता कहलाती है।

प्रशासन में मुख्य नैतिक चिन्ताऐं–

1. **प्रशासन का औपनिवेशिक स्वरूप** – भारतीय प्रशासनिक तंत्र की स्थापना अंग्रेजों के द्वारा की गई जिसका मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक हितों की पूर्ति करना था।
   - यह वेबर के नौकरशाही मॉडल पर आधारित है।
   - यह जनकल्याण के उद्देश्य में बाधक है।
   - प्रशासन में अत्यधिक गोपनीयता का प्रयोग किया जाता है। तथा पारदर्शिता का अभाव है।
   - सिविल सेवाओं में पदसोपान का प्रयोग किया जाता है जो कि टीम भावना के साथ काम करने में बाधा है।
   - जन सहभागिता का अभाव तथा सत्ता का केन्द्रीकरण।
   - सिर्फ नियमों व शक्ति के अत्यधिक प्रयोग पर बल दिया जाता है जन संवेदनाओं की अवहेलना की जाती है।
   - सिविल सेवाओं का अभिजातिकरण जिसके कारण जन सम्पर्क का अभाव होता है।

वेबर का नौकरशाही मॉडल	लेकतांत्रिक मॉडल
गोपनीयता	पारदर्शिता
पदसोपान क्रम	टीम भावना
जन सहभागिता	जन सहभागिता
नियमों पर बल	जनसेवा पर बल
सत्ता का केन्द्रीकरण	सत्ता का विकेन्द्रीकरण
तार्किकता	भावनात्मक बुद्धिमता

2. **सिविल सेवकों का राजनीतिकरण** –
   - सिविल सेवक राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर कार्य करते है तथा उनकी खुद की भी राजनीतिक तटस्थता प्रभावित होती है।
   - सिविल सेवक राजनेताओं का उपयोग ट्रांसफर, पोस्टिंग एवं अन्य विभागीय कार्यवाहियों से बचने के लिए करते हैं।
   - सिविल सेवकों की स्वयं की भी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ होती हैं।
3. **सिविल सेवकों में साम्प्रदायिकता और जातिवाद–**
   - सिविल सेवक विभिन्न जाति, धर्म आधारित दबाव समूह के संपर्क में होते हैं।
   - इनका उपयोग निजी हितों के लिए किया जाता है, इससे सिविल सेवक पक्षपात पूर्ण कार्यवाही करते हैं।
4. **सिविल सेवकों में बढ़ता हुआ तनाव** –
   - लोक कल्याणकारी राज्य में सिविल सेवकों से जनता की अपेक्षाएँ अत्यधिक हैं परन्तु संसाधन सीमित हैं जिसके कारण कार्य का बोझ अधिक हो जाता है।
   - मीडिया आदि का दबाव भी सिविल सेवको पर अत्यधिक होता है।
   - कार्य एवं जीवन के बीच असंतुलन।

5. **राजनीतिक हस्तक्षेप –**
   - कुछ मात्रा में राजनीतिक मार्गदर्शन अनिवार्य है, परन्तु इसकी अधिकता से कार्य की दक्षता प्रभावित होती है।
   - सिविल सेवकों की नियुक्ति के लिए राजनेताओं के द्वारा अनुशंसा की जाती है, ऐसे राजनेता के विरूद्ध कार्यवाही से सिविल सेवकों के द्वारा पक्षपात किया जाता है।
   - सिविल सेवकों को कार्यकाल की सुरक्षा नहीं मिलती हैं, इसलिए बार–बार उनका स्थानान्तरण किया जाता है।
6. **भ्रष्टाचार–** अधिकारों का दुरूपयोग जिससे की व्यक्तिगत हितों की पूर्ति की जाए। जैसे– रिश्वत लेना, गबन करना, किसी एक पक्ष को लाभ पहुंचाना।

क्षेत्र के आधार पर भ्रष्टाचार –

1. साझा भ्रष्टाचार– इसमें निजी क्षेत्र और सिविल सेवक मिलकर भ्रष्टाचार करते हैं जिससे की दोनों को लाभ होता है। उदाहरण–2 G घोटाला।
2. उत्पीड़न मूलक भ्रष्टाचार – इसमें लाभार्थी को लाभ देने के बदले रिश्वत की मांग की जाती है तथा लाभार्थी को पीड़ित किया जाता है।

भ्रष्टाचार के कारण –

1. प्रशासनिक कारण–
- प्रशासनिक प्रक्रियाएं अत्यधिक जटिल है।
- सिविल सेवकों के पास विवेकाधीन शक्तियाँ होती है।
- प्रशासन में जवाबदेहिता का अभाव।
- आचार संहिता और नैतिक संहिता को पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जाता है।
- अभियोजन के लिए राजनीतिक स्वीकृति की आवश्यकता।

2. कानूनी कारण –
- भ्रष्टाचार के विरूद्ध सशक्त कानूनों का अभाव।
- कानूनों का पूर्णत क्रियान्वयन न होना।
- कमजोर व्हिसल ब्लोअर संरक्षण कानून।
- कानूनी प्रक्रिया जटिल और लम्बी है।

3. सामाजिक कारण –
- समाज में नैतिक मूल्यों का अभाव।
- समाज में भ्रष्टाचार की स्वीकार्यता है। अमृत्यसेन ने इसे 'भ्रष्टाचार का संस्कृतिकरण' कहा है।
- उपभोक्तावादी और भौतिकतावादी संसकृति।

4. आर्थिक कारण –
- आर्थिक अवसरों की कमी ।
- कम वेतन और अधिक उत्तरदायित्व।
- अर्थ व्यवस्था का समाजवादी ढाँचा (लाईसेंस राज, इंस्पेक्टर राज)
- क्रोनी कैपिटलिज्म (राजनेता, सिविल सेवक, उद्योगपति तीनों मिलकर भ्रष्टाचार करते हैं)

5. राजनीतिक कारण –
- भ्रष्टाचारियों को राजनीतिक संरक्षण मिलता है।
- राजनीति में धन बल और बाहुबल का प्रयोग।
- भ्रष्टाचार एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा नहीं है।

6. व्यक्तिगत कारण –
- निजी जीवन की महत्वकांक्षाएँ सार्वजनिक जीवन के उत्तरदायित्वों पर हावी हो जाती है।
- मनोवैज्ञानिक प्रवृति।

- निजी जीवन में नैतिकता का अभाव।

भ्रष्टाचार के समाधान

- प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाना चाहिए।
- ई–गवर्नेंस और सूचना का अधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- प्रशासनिक जवाबदेहिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- प्रशासन में ईमानदार कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- प्रशासन में ऐसे अधिकारियों का चयन किया जाना चाहिए जिनकी नैतिकता का स्तर उच्च हो।
- आचार संहिता और नैतिक संहिता को लागू किया जाना चाहिए।
- सिविल सेवकों को नैतिक मूल्यों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिए।

उपाय –

1. कानूनी उपाय –

- भ्रष्टाचार के विरूद्ध सशक्त कानूनों का निर्माण किया जाना चाहिए।
- भ्रष्टाचार निरोधक कानून, बेमानी सम्पति कानून आदि पूर्ण रूप से लागू किया जाना चाहिए।
- कानून की प्रक्रिया को सरल और तीव्र बनाया जाना चाहिए।
- भ्रष्टाचार के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना की जानी चाहिए।
- व्सिलब्लोअर को संरक्षण दिया जाना चाहिए।

2. सामाजिक उपाय –

- समाज की नैतिकता का स्तर बढ़ाया जाना चाहिए।
- भ्रष्टाचार के विरूद्ध सामाजिक दबाव बनाया जाना चाहिए।
- ईमानदार सिविल सेवकों की सामाजिक प्रतिष्ठता बढ़नी चाहिए।

3. आर्थिक उपाय

- वेतन विसंगतियों को दूर किया जाना चाहिए।
- आर्थिक अवसर सृजित किए जाने चाहिए।
- अर्थव्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप का कम किया जाना चाहिए।

4. राजनीतिक उपाय –

- भ्रष्टाचार के विरूद्ध राजनीतिक जन जागरूकता बढ़ायी जानी चाहिए।
- भ्रष्टाचार एक राजनीतिक मुद्दा होना चाहिए
- भ्रष्ट लोगों को राजनीति में प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

5. व्यक्तिगत उपाय –

- व्यक्तिगत जीवन में उच्च नैतिक मूल्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- सशक्त चरित्र वाले लोगों को आदर्श बनाया जाना चाहिए।

नैतिक दुविधा

- नैतिक दुविधा एक जटिल निर्णय लेने की स्थिति है जिसमें सभी उपलब्ध विकल्प मूल्यों अथवा नियमों में टकराव के कारण परस्पर विरोधी है तथा निर्णयकर्ता असमंजस में है कि किस विकल्प को चुना जाए।

यह तीन प्रकार की होती है –

1. व्यक्तिगत हानि नैतिक दुविधा – ऐसी परिस्थितियाँ जिनमें नैतिक आचरण के अनुपालन के परिणामस्वरूप लोक सेवक या निर्णयकर्ता को व्यक्तिगत हितो को हानि होती है।
2. सही बनाम सही दुविधा – ऐसी परिस्थिति जब दो या दो से अधिक नैतिक मूल्य परस्पर विरोधी अवस्था में हो।
3. संयुक्त नैतिक दुविधा – इसमें व्यक्तिगत हानि व सही बनाम सही दोनों नैतिक दुविधा उपस्थित होती है।

सामान्यतया, नैतिक दुविधा तीन महत्वपूर्ण संबंधों से उत्पन्न होती है–

1. सिविल सेवक व राजनीतिक नेतृत्व।
2. सिविल सेवक व नागरिक।
3. सिविल सेवा के बीच (मंत्रालय विभाग व एजेंसिया आदि में।)

नैतिक दुविधा का समाधान –

1. **प्रशासन की लोकतांत्रिक जवाबदेहिता** – संसदीय लोकतंत्र में सिविल सेवाएं राजनीतिक नेतृत्व के अधीन होती है, क्योंकि वे राजनैतिक नेतृत्व के प्रति जवाबदेह होते है। इसलिए सिविल सेवकों को राजनीतिक नेतृत्व के आदेशों का पालन करना चाहिए।
   - परन्तु यदि कोई राजनेता कोई अवैध कार्य करने का आदेश देता है, तब सर्वप्रथम आदेश की अवैधता के बारे में राजनेता को बताया जाना चाहिए।
   - यदि फिर भी वह अपने आदेश पर बना रहता हे तब आदेश लिखित में मांगे जाने चाहिए तथा उसका जवाब भी लिखित में दिया जाना चाहिए।
2. **वैधता की अनिवार्यता–**
   - सिविल सेवकों को सदैव कानून का पालन करना चाहिए। यह सुनिश्चित करता है कि जनहितों की रक्षा की जा रही है।
   - यह मनमाने निर्णय लेने को नियंत्रित करता है तथा शक्ति के दुरूपयोग को रोकता है।

3. **सत्यनिष्ठा की अनिवार्यता** – सिविल सेवकों का आचरण नैतिक संहिता व आचार संहिता के अनुसार होना चाहिए क्योंकि यह आंतरिक आत्मनियंत्रण का स्रोत है।
4. **संवेदनशीलता की अनिवार्यता** – सिविल सेवकों को समाज के प्रति उत्तरदायित्व होना चाहिए। उन्हें लोगों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को ध्यान में रखना चाहिए तथा सामाजिक विकास के लिए एक सक्षम वातावरण तैयार करना चाहिए। जैसे– सर्वोदय, अंत्योदय।
5. **नैतिक मार्गदर्शन का प्रयोग–** सिविल सेवकों को नैतिक दुविधा को दूर करने के लिए नैतिक मार्गर्शन का प्रयोग करना चाहिए।
   - वरिष्ठ तथा अनुभवी अधिकारियों की सलाह लेनी चाहिए।
   - अन्तरात्मा से निर्णय लेने चाहिए।
   - उच्चत्तर कर्त्तव्य के लिए निम्नत्तर कर्त्तव्य को त्यागा जा सकता है।
   - वह निर्णय लिया जाना चाहिए जिससे जनकल्याण सुनिश्चित होता है।
   - भावनात्मक बुद्धिमता का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वर्तमान समय की नैतिक दुविधाएँ –

1. व्यक्तिगत दायित्व व संगठन के दायित्वों के बीच।
2. सरकारी नीतियों की व्याख्या।
3. विकास बनाम पर्यावरण।
4. जनता के प्रति जवाबदेहिता तथा सेवा दायित्व।
5. अन्तरात्मा और प्रचलित राजनीतिक विचारधारा के बीच संघर्ष।
6. भावनाएँ बनाम बुद्धि।
7. निजी हित बनाम सार्वजनिक हित।

निजी जीवन में नैतिक दुविधाओं का हल –

- व्यक्ति अपने मूल्यों के प्रति स्पष्ट होना चाहिए।
- संकीर्ण हितों के बजाय व्यापक हितो को अधिक महत्व दें।
- लागत एवं लाभ का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
- नैतिक मार्गदर्शन प्राप्त किया जाना चाहिए।
- व्यक्ति को माता–पिता, गुरुजनों, मित्रजनों, मनोवैज्ञानिक आदि का मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए।
- अन्तर्आत्मा

नैतिक निर्णय

- नैतिक निर्णय लेना एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जिसमें नैतिक सिद्धांतो, नियमो, गुणों के अनुरूप विकल्पों का मूल्यांकन तथा चयन करना सम्मिलित है।
- यह सभी उपल्बध विकल्पों की समीक्षा अनैतिक विचारों को समाप्त करने तथा सर्वोत्तम नैतिक विकल्प चुनने से संबंधित है।
- नैतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में निम्नलिखित गुण आवश्यक है–
  - ➢ प्रतिबद्धता – फल की चिन्ता किये बिना सही कार्य करने की इच्छा।
  - ➢ चेतना – नैतिक सिद्धांतो एवं मुल्यो की जानकारी तथा दैनिक कार्यो में उन्हें लागू करने की इच्छा।
  - ➢ योग्यता – जानकारी एकत्रित करने, मुल्यांकन करने, विकल्प विकसित करने एवं सम्भावित परिणामों और जोखिमों का पूर्वानुमान करने की क्षमता।

❖ नैतिक निर्णय की रूपरेखा– नैतिक निर्णय लेते समय निम्नलिखित दृष्टिकोणों का प्रयोग किया जाना चाहिए–

(i) उपयोगितावादी दृष्टिकोण– वह निर्णय नैतिक है, जिससे अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख सुनिश्चित किया जा सके।

(ii) अधिकारों का दृष्टिकोण– वह निर्णय नैतिक है, जिससे सभी के अधिकारों की रक्षा होती है एवं किसी के भी अधिकारों का हनन नहीं होता।

(iii) न्याय का दृष्टिकोण – वह निर्णय नैतिक है, जो कि निष्पक्ष और न्यायपूर्ण हो, समान लोगों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

(iv) सार्वभौमिक शुभ का दृष्टिकोण – वह निर्णय नैतिक है, जिसमें सभी का कल्याण सुनिश्चित होता है, जैसे– सवोदय, अन्त्योदय, लोकसंग्रह।

(v) सद्गुण दृष्टिकोण – नैतिक निर्णय के अनुसार होने चाहिए जैसे– सिविल सेवकों को आधारभूत मूल्य, निष्पक्षता, सहिष्णुता, राजनीतिक तटस्थता, समानुभूति, करूणा, धैर्य, अनामिता।

नैतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया – इसके तहत 7 प्रमुख बिन्दुओं का पालन किया जाता है।

1. तथ्यों को एकत्रित करना।
2. नैतिक मूल्यों को परिभाषित करना।

3. हितकारकों की पहचान करना।
   हितकारक भी दो प्रकार के होते हैं।
   प्राथमिक हितकारक – जो कि प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित है।
   द्वितीयक हितकारक – जो कि अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित है।
4. प्रभावों और परिणामों की पहचान करना, इसके लिए अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया जा सकता है।
5. सत्यनिष्ठा एवं नैतिक मूल्यों पर विचार
6. रचनात्मक संभावित विकल्प – ऐसे विकल्प के बारे में सोचा जाये जो कि सामान्य रूप से उपलब्ध नहीं है।
7. सही नैतिक निर्णयों की तुलना।

सामाजिक न्याय

- सामाजिक न्याय की आवश्यकता 19वीं सदी में प्रचलित हुई क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति के बहुत से दुष्परिणाम देखे गये।
  जैसे– सामाजिक असमानता का बढ़ना, शोषणकारी गतिविधियों का बढ़ना, मानव अधिकारों का हनन आदि।
- इन दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए सामाजिक न्याय आवश्यक है।
- वर्तमान में यह व्यापक अवधारणा बन चुकी है जिसमें पाँच मुख्य सिद्धान्त शामिल हैं।
  1. संसाधनों तक पहुँच
  2. न्यायसंगत
  3. मानवाधिकार
  4. विविधता
  5. सहभागिता

1. संसाधनों तक पहुँच – सामाजिक और आर्थिक संसाधन सभी को उपलब्ध होना चाहिए, किसी को भी संसाधनों से वंचित नहीं किया जा सकता।
2. न्यायसंगत – संसाधनों का वितरण न्यायपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए एवं वंचित वर्ग को सरकार के द्वारा विशेष सहायता दी जानी चाहिए। जैसे– आरक्षण।
3. मानवाधिकार – प्रत्येक व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है, इसलिए मानवाधिकारों का सम्मान किसया जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों को मान्यता दी गई।
4. सहभागिता – सामाजिक निर्णयों में सभी की भागीदारी होनी चाहिए अर्थात् सभी को उचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।
5. विविधता – समाज में विविध समूह अस्तित्व में है, इस विविधता का सम्मान किया जाना चाहिए, समाज में किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं होना चाहिए।

- सामाजिक न्याय का उद्देश्य है कि एक ऐसे समतामूलक समाज का निर्माण करना, जिसमें सभी को समान स्वतन्त्रता, सम्मान अवसर उपलब्ध हो तथा कमजोर वर्ग को विशेष संरक्षण प्रदान हो।
- न्याय दो प्रकार का होता है–
  (i) प्रक्रियात्मक न्याय – इसका संबंध प्रक्रिया, नियम, कानून से होता है, इसके अनुसार यदि कानून व प्रक्रिया न्यायपूर्ण है तब समाज में भी न्याय होगा।
  (ii) वास्तविक न्याय – यह परिणामों पर केन्द्रित है, इसके अनुसार परिणामों और परिस्थितियों में परिवर्तन करके ही न्याय सुनिश्चित किया जा सकता है।
- समाजिक न्याय का मूलतः संबंध वास्तविक न्याय से हैं।
- जॉन रॉल्स के द्वारा इन दोनों के बीच संबंध स्थापित किया गया।
- भारत में भी इन दोनों का पालन किया जाता है।

मानवीय चिन्ताएँ

- चिन्ताएँ जो मानवीय जीवन के विभिन्न आयामों को प्रभावित करती है मानवीय चिन्ताएँ कहलाती है।

1. **आर्थिक चिंताएँ** – गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, उपभोक्तावाद, संस्कृति, लालच, महँगाई आदि।
2. **सामाजिक चिंताएँ** – सामाजिक भेदभाव, शोषण, असहिष्णुता, समाज में बढ़ती हुई घृणा, साम्प्रदायिकता, नस्लीय भेदभाव, जातिवाद, अन्धविश्वास आदि।
3. **वैश्विक चिन्ताएँ** – जलवायु परिवर्तन, बढ़ता हुआ प्रदूषण, आतंकवाद, महामारी, गृहयुद्ध, शरणार्थियों का संकट, परमाणु हथियार, वैश्विक सहयोग का अभाव।
4. **तकनीकी चिन्ताएँ** – साइबर क्राइम, कृत्रिम बुद्धिमता, नैनो तकनीकी, रोबोट्स आदि।
5. **व्यक्तिगत चिंताएँ** – संबंधों में तनाव, बढ़ता हुआ मानसिक तनाव, नैतिकता की कमी, आध्यात्मिकता की कमी, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि।

Springboard ACADEMY

जवाबदेहिता

प्रशासन में जवाबदेहिता –

- अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच संतुलन के लिए जवाबदेहिता आवश्यक है, यह सुनिश्चित करता है कि अधिकारों का दुरूपयोग नहीं किया जाए तथा कर्त्तव्यों का पालन किया जाए।

जवाबदेहिता के 3 मुख्य घटक है –

1. उत्तरदायित्व – किए गए कार्यों और लिए गए निर्णयों की उचित व्याख्या।
2. प्रवर्तनीयता – यदि कोई व्यक्ति कर्त्तव्यों का उल्लंघन करता है तब उसके विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए।
3. संवेदनशीलता – सभी कार्य एवं निर्णय जनहित में लिए जाने चाहिए।

जवाबदेहिता के प्रकार –

1. राजकोषीय जवाबदेहिता – यह जवाबदेहिता का पारम्परिक स्वरूप है जो कि सुनिश्चित करता है कि सार्वजनिक धन का प्रयोग सही प्रकार से किया गया है।
जैसे– महानियंत्रक एवं लेखा परीक्षक, लोक लेखा समिति।

2. प्रक्रिया जवाबदेहिता – यह सुनिश्चित करता है कि कार्य व निर्णयों में प्रक्रिया का पालन किया गया है या नहीं। जैसे– यदि कोई निविदा जारी की जाती है तो उचित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए।

3. कार्यक्रम जवाबदेहिता –यह सुनिश्चित करता है कि कार्यों और निर्णयों का इच्छित परिणाम प्राप्त किया गया है या नहीं।

4. कानूनी जवाबदेहिता – यह सुनिश्चित करता है कि कार्य और निर्णय कानून के अनुसार है या नहीं। इसके लिए न्यायिक समीक्षा की जानी चाहिए।

5. प्रशासनिक जवाबदेहिता – प्रशासन में पदसोपान क्रम होता है, जिसमें नीचे स्तर का अधिकारी उच्च स्तर के अधिकारी के प्रति जवाबदेह होता है।

6. राजनीतिक जवाबदेहिता – कार्यपालिका संसद के प्रति जवाबदेह है और संसद जनता के प्रति जवाबदेह है।

7. नैतिक जवाबदेहिता – यह जवाबदेहिता अन्तरआत्मा या ईश्वर के प्रति होती है।

जवाबदेहिता के लाभ –

1. कर्त्तव्यों व अधिकारों के बीच संतुलन स्थापित होता है।
2. अधिकारों के दुरूपयोग को रोकता है।
3. कर्त्तव्यों के पालन को सुनिश्चत करता है।
4. प्रशासन में पारदर्शिता बढ़ती है।
5. प्रशासन के प्रति जनता का विश्वास बढ़ता है।
6. प्रशासनिक कार्यों में उच्च मानक स्थापित होते है।

जवाबदेहिता को निम्नलिखित माध्यमों से लागू किया जाता है–

1. जनजागरूकता
2. जन भागीदारी
3. जन आन्दोलन
4. प्रेस और मीडिया
5. न्यायपालिका स्वतंत्र
6. संवैधानिक प्रावधान
7. प्रगतिशील कानून, जैसे– सिटीजन चार्टर, लोकसेवा गारण्टी अधिनियम
8. प्रशासन में तकनीक का प्रयोग